मई, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय
निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. रीटा वशिष्ट,
सचिव, विधायी विभाग

श्री उदय कुमारा,
अपर सचिव, विधायी विभाग,
(विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कमला कान्त,
प्रधान संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाहन्वी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN 2457-0494

कीमत : **डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मई, 2023 अंक - 5

प्रधान संपादक

कमला कान्त

संपादक

अविनाश शुक्ला

[2023] 2 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से हमने आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा 2023 की दांडिक अपील संख्या 1045-46, **कमर घानी उस्मानी** बनाम **गुजरात राज्य** [2023] 2 उम. नि. प. 155 वाले मामले में तारीख 10 अप्रैल, 2023 को पारित निर्णय प्रस्तुत किया है । यह मामला 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 163 के अधीन व्यतिक्रम जमानत से संबंधित है । इस मामले में अपीलार्थी-अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया किंतु गिरफ्तारी के नब्बे दिनों के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया । अन्वेषण अधिकारी ने नब्बे दिनों की अवधि व्यतीत हो जाने के पूर्व अन्वेषण की अवधि को आगे विस्तारित किए जाने के लिए आवेदन किया । विचारण न्यायालय द्वारा तीस दिनों की अवधि के लिए अन्वेषण के प्रयोजनार्थ समय विस्तार प्रदान कर दिया गया । यह समय विस्तार अभियुक्त की अनुपस्थिति में प्रदान किया गया था, किंतु अगले ही दिन अपीलार्थी-अभियुक्त को समय विस्तार के बारे में सूचित कर दिया गया था । तत्पश्चात् अन्वेषण विस्तारित अवधि के भीतर पूर्ण नहीं किया जा सका और अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूर्ण करने के लिए पुन: समय विस्तार के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय ने पुन: तीस दिनों की अवधि के लिए समय विस्तार प्रदान कर दिया । इसी दौरान अभियुक्त ने पहला समय विस्तार उसकी गैर मौजूदगी में प्रदान किए जाने के आधार पर यह कहते हुए व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन

प्रस्तुत किया कि पहला समय विस्तार उसकी मौजूदगी में प्रदान नहीं किया गया था और इसलिए प्रथम समय विस्तार विधि की दृष्टि में दूषित था । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त का आवेदन नामंजूर कर दिया । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त की अपील को खारिज कर दी । अत: अपीलार्थी-अभियुक्त ने माननीय उच्चतम न्यायालय की शरण ली । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त की अपील को खारिज करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों जिनमें अभियुक्त द्वारा व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाता है और आवेदन प्रस्तुत किए जाने की तारीख के पहले ही अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय विस्तार प्रदान किया जा चुका है और तत्पश्चात् दूसरा समय विस्तार भी प्रदान किया जा चुका है और यद्यपि प्रथम समय विस्तार उसकी गैर मौजूदगी में प्रदान किया गया था किंतु द्वितीय समय विस्तार उसकी मौजूदगी में प्रदान किया गया, किंतु अभियुक्त ने न तो पहले समय विस्तार को और न ही दूसरे समय विस्तार को चुनौती दी और आरोप पत्र द्वितीय समय विस्तार की अवधि के भीतर फाइल किया गया हो, तो ऐसी स्थिति में अपीलार्थी-अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत का हकदार नहीं माना जा सकता ।

इस अंक में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
क़मर घानी उस्मानी **बनाम** गुजरात राज्य	155
दिनेश कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य	224
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** हरसोलिया मोटर्स और अन्य	170
भास्कर और एक अन्य **बनाम** अयोध्या ज्वैलर्स	249
रवि मंडल **बनाम** उत्तराखंड राज्य	271
शब्बीर **बनाम** उत्तराखंड राज्य (देखिए – पृष्ठ सं. 271)	
हरभजन सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य	211

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 27

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68)

– धारा 2(1)(घ), 2(1)(ङ) और 2(1)(ङ) – 'उपभोक्ता', 'व्यक्ति' और 'सेवा' की परिभाषा – प्रत्यर्थी-एक वाणिज्यिक उद्यम द्वारा अपीलार्थी-नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. से अग्नि बीमा पालिसी लिया जाना – आग लग जाने के कारण प्रत्यर्थी को नुकसान पहुंचना – अपीलार्थी बीमा कंपनी द्वारा प्रत्यर्थी के प्रतिकर के दावे से इनकार किया जाना – प्रत्यर्थी द्वारा राज्य आयोग के समक्ष परिवाद फाइल किया जाना – राज्य आयोग द्वारा प्रत्यर्थी को 'वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए' सेवाएं भाड़े पर लिया जाना मानते हुए 'उपभोक्ता' की परिभाषा के अंतर्गत न आने के कारण परिवाद को संधार्य न पाया जाना – राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रत्यर्थी की अपील को मंजूर किया जाना – बीमा कंपनी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – किसी वाणिज्यिक उद्यम या व्यक्ति को केवल इस कारण कि वह वाणिज्यिक उद्यम है अधिनियम में परिभाषित 'उपभोक्ता' या 'व्यक्ति' पद की परिभाषा से अपवर्जित नहीं किया गया है और प्रत्येक मामले की परीक्षा उसके तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर की जानी चाहिए और यह अवधारण किया जाना आवश्यक है कि बीमा की सेवा का गहरा और प्रत्यक्ष संबंध लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से या उसका प्रमुख आशय या प्रयोजन बीमाकृत या उसके हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ को सृजित करने के लिए सुकर बनाना तो नहीं है और यह पाए जाने पर कि बीमा पालिसी हानि/नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए

पृष्ठ संख्या

ली गई थी और लाभ सृजित करने का कोई तत्व मौजूद नहीं है, तो बीमा कंपनी द्वारा बीमाकृत को अधिनियम में परिभाषित उपभोक्ता के अंतर्गत आने के कारण ऐसे वाणिज्यिक उद्यम के क्षतिपूर्ति के दावे से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम **हरसोलिया मोटर्स और अन्य** 170

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 167 – व्यतिक्रम जमानत – अभियुक्त-अपीलार्थी को गिरफ्तार किया जाना – आरोप पत्र फाइल करने की 90 दिन की अवधि के अवसान से पूर्व अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए आगे और समय के विस्तार के लिए निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा तीस दिन की अवधि के लिए समय विस्तार प्रदान किया जाना – यह समय विस्तार अभियुक्त की गैर-मौजूदगी में प्रदान किया जाना किंतु अगले ही दिन इस बारे में अभियुक्त को सूचित कर दिया जाना – अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए पुन: समय विस्तार के लिए निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा पुन: तीस दिन का समय विस्तार प्रदान किया जाना और यह विस्तार अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया जाना – इसी बीच अभियुक्त द्वारा पहला समय विस्तार उसकी मौजूदगी में प्रदान न करने और इसलिए वह विधि की दृष्टि से दूषित होने के कारण व्यतिक्रम जमानत के लिए अधिकार अर्जित कर लेने के आधार पर व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाना – विचारण

पृष्ठ संख्या

न्यायालय द्वारा आवेदन नामंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त की अपील को खारिज कर दिया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त द्वारा व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत करने के समय पहले ही समय विस्तार की अवधि अस्तित्व में हो और यहां तक कि उसके पश्चात् भी दूसरा समय विस्तार अस्तित्व में होने, जो उसकी मौजूदगी में प्रदान किया गया हो, किंतु अभियुक्त द्वारा न तो पहले विस्तार को और न ही दूसरे विस्तार को चुनौती दी गई हो और आरोप पत्र समय विस्तार की अवधि के भीतर फाइल किया गया हो, वहां अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार नहीं कहा जा सकता ।

क़मर घानी उस्मानी बनाम **गुजरात राज्य** 155

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302, 34 और 201– हत्या – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य – दोषसिद्धि – मृतक का शव जंगल में पाया जाना – मृतक को अभिकथित रूप से अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखा जाना – मृतक के पिता द्वारा दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अभियुक्तों में से एक अभियुक्त के स्थान पर बाद में एक अन्य अभियुक्त को नामित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने के बारे में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई उल्लेख न हो और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा ऐसा प्रकटन घटना के तीन माह से अधिक समय के पश्चात् किया गया हो और इतने दिनों

पृष्ठ संख्या

तक चुप्पी साधे रखने के लिए दिया स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक न पाया गया हो, मृतक का शव पाए जाने के बारे में पुलिस साक्षियों और मृतक के पिता-इत्तिलाकर्ता के कथन अलग-अलग हों, घटना में प्रयुक्त आयुध के संबंध में न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट को अभियुक्त की परीक्षा करने के दौरान उसे न बताया गया हो, साक्षियों के साक्ष्य में विसंगतियां पाई गई हों, वहां ऐसे अविश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता ।

रवि मंडल बनाम **उत्तराखंड राज्य** 271

– धारा 302, 364, 392, 394, 201 और 34 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनयम, 1872 की धारा 27 और 106] – हत्या और व्यपहरण – परिस्थितिजन्य साक्ष्य – मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने और अपीलार्थी-अभियुक्त के बताने पर मृतक के सामान की बरामदगी होने का साक्ष्य – दोषसिद्धि – अभियुक्तों द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपीलें फाइल किया जाना – अपीलों के लंबित रहने के दौरान एक अभियुक्त की मृत्यु हो जाने के कारण उसकी अपील का उपशमन हो जाना और अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना – संधार्यता – जहां मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने और उसकी मृत्यु होने के अनुमानित समय के बीच एक लंबा अंतराल हो और कोई निकटवर्ती सामीप्य न हो, वहां अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य कमजोर हो जाता है और स्वयमेव उसके आधार पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं होगा और जहां सह-अभियुक्त द्वारा जिस तथ्य का

पृष्ठ संख्या

पहले ही पुलिस के समक्ष प्रकटीकरण कर दिया गया हो, ऐसे तथ्य को बाद में अन्य अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रकटीकरण के आधार पर सुसंगत तथ्य का पता चलना नहीं कहा जा सकता है और बरामदगी से संबंधित ऐसे तथ्य को भी अभियुक्त की दोषिता तय करने के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा परिस्थितियों की श्रृंखला को पूर्ण नहीं करने के कारण अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

दिनेश कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 224

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 1)

– आदेश 21, नियम 92, 94 और 95 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची की मद 134] – सार्वजनिक नीलामी में विक्रय की गई संपत्ति के कब्जे के परिदान के लिए आदेश 21 के नियम 95 के अधीन निष्पादन न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन को मंजूर किया जाना – प्रत्यर्थी का आवेदन परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की मद 134 में विहित अवधि के परे होने के आधार पर अपीलार्थियों द्वारा उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – पुनरीक्षण आवेदन को खारिज किया जाना – संधार्यता – आदेश 21 के नियम 94 में निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की आवश्यकता से यह दर्शित होता है कि विधानमंडल का यह दृष्टिकोण था कि निष्पादन न्यायालय

पृष्ठ संख्या

द्वारा नीलामी की पुष्टि का आदेश पारित कर देना ही पर्याप्त नहीं हो सकेगा और न्यायालय द्वारा विक्रय का प्रमाणपत्र जारी किया जाना इस तथ्य का साक्ष्य होगा कि निष्पादन न्यायालय द्वारा नीलाम विक्रय की पुष्टि की गई है, इसलिए आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की मद 134 के बीच असंगति का निवारण करने का एकमात्र तरीका यह है कि मद 134 का पठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको न्यायालय द्वारा क्रेता के पक्ष में नीलाम विक्रय की पुष्टि करते हुए विक्रय प्रमाणपत्र वास्तव में जारी किया जाता है और उच्चतम न्यायालय के इस विषय पर पूर्ववर्ती निर्णय पर बृहत्तर न्यायापीठ द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता को देखते हुए मामले को एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने के लिए निर्देशित करना उचित होगा ।

भास्कर और एक अन्य बनाम **अयोध्या ज्वैलर्स** 249

स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61)

– धारा 20, 25 और 35 – विनिषिद्ध पदार्थ का अवैध कब्जा – मानसिक दशा की उपधारणा – दोषसिद्धि – सड़क पर एक ट्रक उलटा हुआ पाया जाना और बिखरे पड़े थैलों में स्वापक पदार्थ पाया जाना – दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा अभिकथित रूप से ड्राइवर और क्लीनर को ट्रक से निकलते हुए देखा जाना और ट्रक के स्वामी का नाम बताकर वहां से चले जाना और वापस न आना

पृष्ठ संख्या

– पुलिस द्वारा ट्रक और विनिषिद्ध पदार्थ को अभिरक्षा में लिया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा स्वतंत्र साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित किया जाना और ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर को दोषमुक्त किया जाना किंतु ट्रक के स्वामी को ट्रक का पंजीकृत स्वामी होने के आधार पर दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में असफल रहा हो कि अभिगृहीत यान का किसी अवैध क्रियाकलाप के लिए उपयोग यान के स्वामी-अभियुक्त के ज्ञान और सहमति से किया गया था, वहां धारा 35 के अधीन उपधारणा लागू नहीं होगी और अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त की दोषिता से संबंधित आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए अपने आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहने पर अपनी निर्दोषिता को साबित करने का भार अभियुक्त पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता, इसलिए उसकी दोषसिद्धि को विधिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

हरभजन सिंह बनाम **हरियाणा राज्य** 211

[2023] 2 उम. नि. प. 155

क़मर घानी उस्मानी

बनाम

गुजरात राज्य

[2023 की दांडिक अपील सं. 1045-1046]

10 अप्रैल, 2023

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति सी. टी. रविकुमार

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167 – व्यतिक्रम जमानत – अभियुक्त-अपीलार्थी को गिरफ्तार किया जाना – आरोप पत्र फाइल करने की 90 दिन की अवधि के अवसान से पूर्व अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए आगे और समय के विस्तार के लिए निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा तीस दिन की अवधि के लिए समय विस्तार प्रदान किया जाना – यह समय विस्तार अभियुक्त की गैर-मौजूदगी में प्रदान किया जाना किंतु अगले ही दिन इस बारे में अभियुक्त को सूचित कर दिया जाना – अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए पुन: समय विस्तार के लिए निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा पुन: तीस दिन का समय विस्तार प्रदान किया जाना और यह विस्तार अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया जाना – इसी बीच अभियुक्त द्वारा पहला समय विस्तार उसकी मौजूदगी में प्रदान न करने और इसलिए वह विधि की दृष्टि से दूषित होने के कारण व्यतिक्रम जमानत के लिए अधिकार अर्जित कर लेने के आधार पर व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन नामंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त की अपील को खारिज कर दिया जाना – संधार्यता – जहां अभियुक्त द्वारा व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन

प्रस्तुत करने के समय पहले ही समय विस्तार की अवधि अस्तित्व में हो और यहां तक कि उसके पश्चात् भी दूसरा समय विस्तार अस्तित्व में होने, जो उसकी मौजूदगी में प्रदान किया गया हो, किंतु अभियुक्त द्वारा न तो पहले विस्तार को और न ही दूसरे विस्तार को चुनौती दी गई हो और आरोप पत्र समय विस्तार की अवधि के भीतर फाइल किया गया हो, वहां अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार नहीं कहा जा सकता ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अभियुक्त को तारीख 29 जनवरी, 2022 को गिरफ्तार किया गया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन इसके लिए यथा उपबंधित 90 दिन की अवधि का तारीख 29 अप्रैल, 2022 को अवसान होना था । तथापि, अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 22 अप्रैल, 2022 को अन्वेषण पूरा करने हेतु समय का विस्तार करने के लिए निवेदन किया जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 30 दिन की अवधि का विस्तार प्रदान करते हुए मंजूर किया गया । अभियुक्त को तारीख 23 अप्रैल, 2022 को ही इस विस्तार के बारे में सूचित कर दिया गया था । तारीख 22 मई, 2022 को अन्वेषण अधिकारी ने पुन: आगे और विस्तार के लिए निवेदन किया जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 22 मई, 2022 को मंजूर किया गया । यह दूसरा विस्तार अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया गया था । इसी बीच, अभियुक्त ने तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत का आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि उस समय जब तारीख 22 अप्रैल, 2022 को पहला विस्तार प्रदान किया गया था तब उसे अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान नहीं किया गया था और अभियुक्त को मौजूद नहीं रखा गया था, इसलिए पहला विस्तार विधि की दृष्टि से दूषित था और इसलिए अभियुक्त ने तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत प्राप्त करने का अधिकार अर्जित कर लिया था । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया । अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील (अपीलें) को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा खारिज कर दिया गया । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में

अपील (अपीलें) फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील (अपीलें) को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा संजय दत्त बनाम राज्य मार्फत केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बंबई वाले मामले में यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है कि अभिहित न्यायालय द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए उसके द्वारा कोई विस्तार प्रदान करने से पूर्व अभियुक्त को सूचना दी जानी आवश्यक नहीं है । इसका अर्थ यह है कि अभियुक्त को उस समय न्यायालय के समक्ष मौजूद रखा जाना चाहिए जब न्यायालय अन्वेषण पूर्ण करने के लिए कोई विस्तार प्रदान करे । हितेन्द्र विष्णु ठाकुर वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को कि अभियुक्त को एक सूचना दी जानी चाहिए जिससे वह विस्तार का विरोध कर सके, संजय दत्त वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था । इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की स्कीम के अधीन और अन्वेषण अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय का विस्तार करने के लिए निवेदन संबंधित न्यायालय के इस समाधान के अध्यधीन है कि क्या आगे विस्तार प्रदान किया जाए या नहीं । न्यायालय का उन आधारों पर समाधान होना चाहिए जिन पर विस्तार की ईप्सा की जाती है । जब न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए दो विस्तारों को चुनौती नहीं दी गई है और जब तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया गया था, उस समय पर पहले ही विस्तार अस्तित्व में था और यहां तक कि उसके पश्चात् भी एक दूसरा विस्तार प्रदान किया गया था जो अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया गया था और उसके पश्चात् जब विस्तार की अवधि के भीतर आरोप पत्र फाइल किया गया था, तो अभियुक्त उसके द्वारा किए गए निवेदन के अनुसार कानूनी/व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने का हकदार नहीं है । अत: मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को कानूनी/व्यतिक्रम जमानत से इनकार करते हुए निकाले गए अंतिम निष्कर्ष से सहमत हैं । (पैरा 6.2.2 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2022]	2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1290 : **जिगर** उर्फ **जिम्मी प्रवीणचंद्र आदित्य** बनाम **गुजरात राज्य** ;	4.1, 4.4, 4.5, 5.1, 6.2, 6.4
[2018]	(2018) 4 एस. सी. सी. 405 : **रामबीर शोकीन** बनाम **राज्य** ;	5.1, 6.3
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 1 : **सय्यद मोहम्म्द अहमद काज़मी** बनाम **राज्य** ;	4.3, 4.5, 5.4, 6.2, 6.2.3
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 65 : **नरेन्द्र जी. गोयल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	5.2
[1994]	(1994) 4 एस. सी. सी. 602 : **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	4.2, 4.5, 5, 6.2, 6.2.1, 6.2.2, 6.4
[1994]	(1994) 5 एस. सी. सी. 410 : **संजय दत्त** बनाम **राज्य मार्फत केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बंबई (II)** ।	4.2, 4.4 4.5, 5, 6.2, 6.2.2, 6.4

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 1045-1046.

2022 की दांडिक अपील सं. 1215 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 23 सितंबर, 2022 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री महमूद प्राचा, (सुश्री) के. वी. भारती उपाध्याय, सनावर चौधरी, जतिन भट्ट और ध्रुव यादव

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री तुषार मेहता, महा-सालिसिटर, रजत नायर, (सुश्री) स्वाति घिल्दियाल, माधव सिंहल और (सुश्री) देवयानी भट्ट

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – इजाजत दी गई ।

2. मूल अभियुक्त ने 2022 की दांडिक अपील सं. 1215 और 2022 की दांडिक अपील सं. 1216 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा तारीख 23 सितंबर, 2022 को पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर ये अपीलें फाइल की हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने उक्त अपीलों को खारिज कर दिया और अपीलार्थी-अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन कानूनी जमानत (व्यतिक्रम जमानत) पर छोड़ने से इनकार कर दिया ।

3. इन अपीलों के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं –

3.1 अभियुक्त को तारीख 29 जनवरी, 2022 को गिरफ्तार किया गया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन इसके लिए यथा उपबंधित 90 दिन की अवधि का तारीख 29 अप्रैल, 2022 को अवसान होना था । तथापि, अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 22 अप्रैल, 2022 को अन्वेषण पूरा करने के लिए समय का विस्तार करने हेतु निवेदन किया जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 30 दिन की अवधि का विस्तार प्रदान करते हुए मंजूर किया गया । अभियुक्त को तारीख 23 अप्रैल, 2022 को ही इस विस्तार के बारे में सूचित कर दिया गया था । तारीख 22 मई, 2022 को अन्वेषण अधिकारी ने पुन: आगे और विस्तार करने के लिए निवेदन किया जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 22 मई, 2022 को मंजूर किया गया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि तारीख 22 मई, 2022 को दूसरा विस्तार अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया गया था । इसी बीच, अभियुक्त ने तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत का आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि उस समय जब तारीख 22 अप्रैल, 2022 को पहला

विस्तार प्रदान किया गया था तब उसे अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान नहीं किया गया था और अभियुक्त को मौजूद नहीं रखा गया था, इसलिए पहला विस्तार विधि की दृष्टि से दूषित था और इसलिए अभियुक्त ने तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत प्राप्त करने का अधिकार अर्जित कर लिया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन (आवेदनों) को नामंजूर कर दिया । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अपीलों को खारिज कर दिया । इसलिए मूल अभियुक्त की प्रेरणा पर ये अपीलें फाइल की गई हैं ।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री महमूद प्राचा और प्रत्यर्थी-गुजरात राज्य की ओर से विद्वान् महा-सालिसिटर श्री तुषार मेहता हाजिर हुए ।

4.1 अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री प्राचा ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा जिस निर्णय और आदेश का अवलंब लिया गया है, उसे इस न्यायालय द्वारा बाद में **जिगर** उर्फ **जिम्मी प्रवीणचंद्र आदित्य** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में अपास्त कर दिया गया है ।

4.2 अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री प्राचा द्वारा यह भी दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी को अन्वेषण की अवधि के विस्तार के लिए पहले आवेदन पर विचार करते समय विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था । यह दलील दी गई कि **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[2] और **संजय दत्त** बनाम **राज्य मार्फत केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बंबई (II)**[3] वाले मामले में अन्वेषण की अवधि के विस्तार के लिए आवेदन पर विचार करने के समय पर अभियुक्त को सूचना दिया जाना आज्ञापक

---

[1] 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1290.

[2] (1994) 4 एस. सी. सी. 602.

[3] (1994) 5 एस. सी. सी. 410.

अभिनिर्धारित किया गया है । यह दलील दी गई कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इसका आगे निर्वचन करते हुए यह अर्थ निकाला गया था कि कोई लिखित सूचना देना आज्ञापक नहीं है अपितु अभियुक्त की मौजूदगी पर्याप्त होगी । यह दलील दी गई कि इसलिए **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि के अनुसार भी अन्वेषण की अवधि के विस्तार के लिए आवेदन पर विचार करने के समय पर अभियुक्त की मौजूदगी आवश्यक है । यह दलील दी गई कि इसलिए वर्तमान मामले में जब तारीख 22 अप्रैल, 2022 को पहला विस्तार प्रदान किया गया था, तब स्वीकृत रूप से अभियुक्त को विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था, इसलिए पहला विस्तार स्वयमेव अवैध है और विधि की दृष्टि में विस्तार नहीं है और इसलिए उसके पश्चात् जब अभियुक्त ने व्यतिक्रम जमानत/कानूनी जमानत के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन आवेदन (आवेदनों) को फाइल किया था तब अभियुक्त ने कानूनी जमानत पर छोड़े जाने के लिए एक अजेय अधिकार अर्जित कर लिया था क्योंकि उस समय तक 90 दिन की अवधि समाप्त हो गई थी और पहले विस्तार की अनदेखी की जानी चाहिए ।

4.3 अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया था कि आरंभिक आदेश अपास्त हो जाने के पश्चात् अन्वेषण की अवधि का भूतलक्षी प्रभाव से विस्तार अनुज्ञेय नहीं है ।

4.4 अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि हाल ही में **जिगर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) और **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् विनिर्दिष्ट रूप से इस प्रतिपादना को दोहराया कि अन्वेषण की अवधि का विस्तार करने के समय पर अभियुक्त को पेश करने में

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 1.

असफलता के कारण ऐसा विस्तार विधि की दृष्टि में दूषित हो जाता है और अभियुक्त कानूनी जमानत के लिए हकदार हो जाता है ।

4.5 उपरोक्त दलीलें देने और **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) ; **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** (उपर्युक्त) ; **संजय दत्त** (उपर्युक्त) और **जिगर** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का जोरदार रूप से अवलंब लेने के पश्चात् वर्तमान अपीलों को मंजूर करने और अपीलार्थी-अभियुक्त को कानूनी जमानत पर छोड़ने के लिए प्रत्यर्थी को निदेश देने का निवेदन किया गया ।

5. वर्तमान अपीलों का विरोध करते हुए राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् महा-सालिसिटर श्री तुषार मेहता ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को बाद में इस न्यायालय द्वारा **संजय दत्त** (उपुर्यक्त) वाले मामले में कम प्रभावी कर दिया गया था । यह दलील दी गई कि **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि अन्वेषण के लिए समय का विस्तार करने के समय पर अभिहित न्यायालय द्वारा इससे पूर्व कि कोई विस्तार प्रदान किया जाए, अभियुक्त को सूचना दी जानी चाहिए, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए अब एक उचित विधि नहीं है । यह दलील दी गई कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय को स्पष्ट किया था और यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया था कि एकमात्र अपेक्षा अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(1) के अनुसार न्यायालय के समक्ष पेश करना है और अभियुक्त विस्तार के लिए कारणों को देते हुए लिखित सूचना का हकदार नहीं है ।

5.1 अब जहां तक **जिगर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेने का संबंध है, जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि उक्त विनिश्चय पर बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि उक्त विनिश्चय में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 को ध्यान में नहीं रखा था । यह दलील दी

गई कि यह न्यायालय **रामबीर शोकीन** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि पर विचार करने में असफल रहा था, जिसमें स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त व्यक्ति अन्वेषण के लिए समयावधि के विस्तार के लिए आवेदन की नामंजूरी के पश्चात् ही जब आरोप पत्र विहित समय के भीतर फाइल नहीं किया जाता है, व्यतिक्रम जमानत के अधिकार के हकदार हैं ।

5.2 यह भी दलील दी गई कि अन्यथा भी, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **नरेन्द्र जी. गोयल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है, अभियुक्त को अन्वेषण के प्रक्रम पर और विशिष्ट रूप से अन्वेषण के लिए समयावधि के विस्तार के प्रक्रम पर सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है । यह दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया था, अभियुक्त अन्वेषण की समयावधि के विस्तार के लिए कारणों को जानने का हकदार नहीं है क्योंकि अभियुक्त को अन्वेषण के प्रक्रम पर सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है ।

5.3 राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् महा-सालिसिटर श्री तुषार मेहता द्वारा यह भी दलील दी गई कि अन्यथा भी इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलार्थी निवेदन किए गए किसी अनुतोष (अनुतोषों), विशिष्ट रूप से, कानूनी जमानत का हकदार नहीं है । यह दलील दी गई कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पहला विस्तार तारीख 22 अप्रैल, 2022 को प्रदान किया गया था । अभियुक्त को अन्वेषण के लिए समय के विस्तार के बारे में तुरंत अगले ही दिन अर्थात् तारीख 23 अप्रैल, 2022 को सूचित कर दिया गया था । यह दलील दी गई कि अभियुक्त द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 2022 को भी (जब 90 दिन की अवधि समाप्त हुई थी) कुछ नहीं किया गया था । यह दलील दी गई कि यद्यपि अभियुक्त को तारीख 23 अप्रैल, 2022 को अन्वेषण के लिए समय विस्तार के बारे में सूचित कर दिया गया था,

---

[1] (2018) 4 एस. सी. सी. 405.

[2] (2009) 6 एस. सी. सी. 65.

किंतु तारीख 10 मई, 2022 तक उसने तारीख 22 अप्रैल, 2022 को अन्वेषण के लिए प्रदान की गई 30 दिन की आगे और अवधि के लिए समय विस्तार को चुनौती नहीं दी थी । यह दलील दी गई कि यहां तक कि उसके पश्चात् जब दूसरी बार विस्तार की ईप्सा की गई थी और यह तारीख 22 मई, 2022 को प्रदान किया गया था, उस तारीख को अभियुक्त मौजूद था और उसकी मौजूदगी में विस्तार प्रदान किया गया था, तब भी अभियुक्त द्वारा 30 दिन की और अवधि के लिए विस्तार प्रदान करते हुए तारीख 22 अप्रैल, 2022 के पूर्ववर्ती आदेश की वैधता और विधिमान्यता पर कोई शिकायत नहीं की गई थी । यह दलील दी गई कि इसलिए जब एक बार अभियुक्त तारीख 22 अप्रैल, 2022 के पहले विस्तार के आदेश को उसे उपलब्ध किन्हीं आधारों पर चुनौती देने में असफल रहा था और समयावधि का विस्तार मंजूर किया गया था और उसके पश्चात् उस समय जब दूसरा विस्तार प्रदान किया गया था तब अभियुक्त मौजूद था और उसने तारीख 22 अप्रैल, 2022 को प्रदान किए गए पहले विस्तार के विषय में कोई शिकायत नहीं की थी, उसके पश्चात् अभियुक्त तारीख 22 अप्रैल, 2022 को प्रदान किए गए पहले को प्रदान करने पर कोई शिकायत करने के लिए स्वतंत्र नहीं है ।

5.4 यह दलील दी गई कि अत: उस समय जब अभियुक्त ने तारीख 10 मई, 2022 को कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन (आवेदनों) को प्रस्तुत किया था, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 22 अप्रैल, 2022 के आदेश द्वारा पहले ही अन्वेषण के लिए समय का विस्तार दे दिया गया था, जिसे अभियुक्त द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और इसलिए विस्तार की अवधि के दौरान व्यतिक्रम/कानूनी जमानत के लिए आवेदन कतई कायम रखने योग्य नहीं होगा (होंगे) क्योंकि उक्त आवेदन (आवेदनों) को अन्वेषण के लिए समयावधि के विस्तार के दौरान किया गया था । विद्वान् महा-सालिसिटर श्री मेहता द्वारा यह दलील दी गई कि यहां तक कि तारीख 10 मई, 2022 को प्रस्तुत किए गए व्यतिक्रम/कानूनी जमानत के लिए आवेदन (आवेदनों) में भी अभियुक्त ने यह प्रकट नहीं किया था कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 22 अप्रैल, 2022 के आदेश द्वारा अन्वेषण के लिए विस्तार प्रदान किया था, जिसके बारे में अभियुक्त को तारीख 23 अप्रैल,

2022 को संसूचित किया गया था । यह दलील दी गई कि अत: उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त की ओर से अवलंब लिए गए इस न्यायालय के विनिश्चयों में से कोई भी विनिश्चय प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगा । यह दलील दी गई कि जहां तक **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का संबंध है, विद्वान् महा-सालिसिटर द्वारा दलील दी गई कि उक्त विनिश्चय के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होंगे । यह दलील दी गई कि इस न्यायालय के समक्ष मामले में वास्तव में विस्तार को सेशन न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और विस्तार को विधि की दृष्टि में दूषित होना अभिनिर्धारित किया गया था ।

5.5 उपरोक्त दलीलें देने के पश्चात् वर्तमान अपीलों को खारिज करने का निवेदन किया गया ।

6. हमने अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री महमूद प्राचा और गुजरात राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् महा-सालिसिटर श्री तुषार मेहता को सुना ।

6.1 संक्षिप्त प्रश्न जो इस न्यायालय के विचार के लिए उठता है, यह है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के लिए इस आधार पर हकदार होगा कि उस समय जब अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार हेतु अन्वेषण अभिकरण द्वारा निवेदन किया गया था और विचारण न्यायालय द्वारा इसे प्रदान किया गया था, तब अभियुक्त को मौजूद नहीं रखा गया था ।

6.2 अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) ; **संजय दत्त** (उपर्युक्त) ; **सय्यद मोहम्मद काज़मी** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों और **जिगर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय का जोरदार रूप से अवलंब लिया ।

6.2.1 **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया था कि जब लोक

अभियोजक द्वारा समय का विस्तार प्रदान करने के लिए अभिहित न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, तो ऐसा विस्तार प्रदान करने से पूर्व अभियुक्त को इसकी सूचना जारी की जानी चाहिए जिससे अभियुक्त को उसे उपलब्ध सभी विधिसम्मत और वैध आधारों पर विस्तार का विरोध करने का अवसर मिल सके ।

6.2.2 तथापि, उसके पश्चात् **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपुर्यक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया और **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपुर्यक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए यथा पूर्वोक्त दृष्टिकोण को इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि अभिहित न्यायालय द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए उसके द्वारा कोई विस्तार प्रदान करने से पूर्व अभियुक्त को सूचना दी जानी आवश्यक नहीं है । इसका अर्थ यह है कि अभियुक्त को उस समय न्यायालय के समक्ष मौजूद रखा जाना चाहिए जब न्यायालय अन्वेषण पूर्ण करने के लिए कोई विस्तार प्रदान करे । **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपुर्यक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को कि अभियुक्त को एक सूचना दी जानी चाहिए जिससे वह विस्तार का विरोध कर सके, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था । इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की स्कीम के अधीन और अन्वेषण अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय का विस्तार करने के लिए निवेदन संबंधित न्यायालय के इस समाधान के अध्यधीन है कि क्या आगे विस्तार प्रदान किया जाए या नहीं । न्यायालय का उन आधारों पर समाधान होना चाहिए जिन पर विस्तार की ईप्सा की जाती है ।

6.2.3 अब जहां तक अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा **सय्यद मोहम्मद अहमद काज़मी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का लिए गए अवलंब का संबंध है, आरंभ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उक्त विनिश्चय प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगा । इस न्यायालय के समक्ष

मामले में वास्तव में विद्वान् मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदान किए गए विस्तार को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि विद्वान् मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को अभियुक्त की न्यायिक अभिरक्षा को बढ़ाने की कोई सक्षमता नहीं थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने इसे स्वीकार किया । तथापि, उसके पश्चात् नए सिरे से विस्तार की ईप्सा की गई, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन विहित अवधि से परे थी और इसलिए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण की अवधि का भूतलक्षी प्रभाव से विस्तार अनुज्ञेय नहीं होगा ।

6.3 इसी प्रकार, विद्वान् महा-सालिसिटर द्वारा अवलंब लिए गए **रामबीर शोकीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगा । **रामबीर शोकीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार हेतु अन्वेषण अभिकरण द्वारा आवेदन के लंबित रहते हुए अभियुक्त ने कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया था और इस पर इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण अभिकरण द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार हेतु जो आवेदन किया गया था वह समय पर किया गया था और लंबित रखा गया था इसलिए न्यायालय द्वारा पहले उसका विनिश्चय किया जाना चाहिए था ।

6.4 इस प्रकार, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) और **जिगर** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि का सार यह है कि अन्वेषण अभिकरण द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार हेतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन विहित अवधि से परे दिए गए आवेदन पर विचार करते हुए अभियुक्त को सूचना दी जानी चाहिए और/या न्यायालय के समक्ष मौजूद रखा जाना चाहिए जिससे अभियुक्त को यह जानकारी हो सके कि विस्तार की ईप्सा की गई है और प्रदान किया गया है ।

6.5 तथापि, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हमारा मत है कि अपीलार्थी कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के अनुतोष का हकदार नहीं है । इस मामले में तथ्य स्पष्ट हैं जो निम्नलिखित हैं :–

"..... अभियुक्त को तारीख 29 जनवरी, 2022 को गिरफ्तार किया गया था । इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन उपबंधित 90 दिन का अवसान तारीख 29 अप्रैल, 2022 को होगा । अन्वेषण अधिकारी ने 90 दिन की अवधि के भीतर अर्थात् तारीख 22 अप्रैल, 2022 को रिपोर्ट प्रस्तुत की और अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार के लिए निवेदन किया जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 30 दिन की अवधि का विस्तार प्रदान करते हुए मंजूर किया गया । यह सही है कि जिस भी कारण से अभियुक्त को उस समय मौजूद नहीं रखा गया था जब विद्वान् विचारण न्यायालय ने अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार हेतु प्रस्तुत की गई रिपोर्ट पर विचार किया था, तथापि, अभियुक्त को विस्तार के बारे में अगले ही दिन अर्थात् तारीख 23 अप्रैल, 2022 को सूचित कर दिया गया था । अभियुक्त ने इस विस्तार को ऐसे किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जो उसे उपलब्ध हो सकता था और/या ऐसी कोई शिकायत नहीं की कि ऐसा विस्तार अवैध है और/या विधि के प्रतिकूल है । उसने तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत/कानूनी जमानत के लिए इस आधार पर वर्तमान आवेदन किया था कि आरोप पत्र 90 दिन की अवधि के भीतर फाइल नहीं किया गया है । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उस समय जब व्यतिक्रम/कानूनी जमानत के लिए तारीख 10 मई, 2022 को वर्तमान आवेदन किया गया था तब विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही समय का विस्तार कर दिया गया था, इसलिए वह अस्तित्व में था और वह विस्तार तारीख 22 मई, 2022 तक था । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यद्यपि अभियुक्त को अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय के विस्तार के बारे में तारीख 23 अप्रैल, 2022 को सूचित कर दिया गया था, तो भी अभियुक्त ने इसके बारे में तारीख 10 मई, 2022 को प्रस्तुत किए गए कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन में खुलासा नहीं किया था । उसके पश्चात्, तारीख 22 मई, 2022 को अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूर्ण करने के लिए पुन: समय का आगे और विस्तार करने हेतु रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे

विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया/विस्तार प्रदान किया गया, और यह अभियुक्त की मौजूदगी में किया गया था तथा उस समय अभियुक्त मौजूद रहा था । अभियुक्त द्वारा न तो पहले विस्तार को और न ही दूसरे विस्तार को चुनौती दी गई थी ।"

7. अत: मामले के पूर्वोक्त विलक्षण तथ्यों और परिस्थितियों में, जब न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए दो विस्तारों को चुनौती नहीं दी गई है और जब तारीख 10 मई, 2022 को व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया गया था, उस समय पर पहले ही विस्तार अस्तित्व में था और यहां तक कि उसके पश्चात् भी एक दूसरा विस्तार प्रदान किया गया था जो अभियुक्त की मौजूदगी में प्रदान किया गया था और उसके पश्चात् जब विस्तार की अवधि के भीतर आरोप पत्र फाइल किया गया था, तो अभियुक्त उसके द्वारा किए गए निवेदन के अनुसार कानूनी/व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने का हकदार नहीं है । अत: मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हम उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को कानूनी/व्यतिक्रम जमानत से इनकार करते हुए निकाले गए अंतिम निष्कर्ष से सहमत हैं ।

8. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से तथा इसमें ऊपर वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी कानूनी/व्यतिक्रम जमानत के फायदे का हकदार नहीं है । इन परिस्थितियों में, वर्तमान अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं । तथापि, अभियुक्त नियमित जमानत के लिए निवेदन करने के लिए स्वतंत्र होगा जिस पर विधि के अनुसार इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर विचार किया जा सकेगा । तद्नुसार, वर्तमान अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

[2023] 2 उम. नि. प. 170

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.

बनाम

हरसोलिया मोटर्स और अन्य

[2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353]

13 अप्रैल, 2023

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी और न्यायमूर्ति सी. टी. रविकुमार

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) – धारा 2(1)(घ), 2(1)(ड) और 2(1)(ङ) – 'उपभोक्ता', 'व्यक्ति' और 'सेवा' की परिभाषा – प्रत्यर्थी-एक वाणिज्यिक उद्यम द्वारा अपीलार्थी-नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. से अग्नि बीमा पालिसी लिया जाना – आग लग जाने के कारण प्रत्यर्थी को नुकसान पहुंचना – अपीलार्थी बीमा कंपनी द्वारा प्रत्यर्थी के प्रतिकर के दावे से इनकार किया जाना – प्रत्यर्थी द्वारा राज्य आयोग के समक्ष परिवाद फाइल किया जाना – राज्य आयोग द्वारा प्रत्यर्थी को 'वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए' सेवाएं भाड़े पर लिया जाना मानते हुए 'उपभोक्ता' की परिभाषा के अंतर्गत न आने के कारण परिवाद को संधार्य न पाया जाना – राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रत्यर्थी की अपील को मंजूर किया जाना – बीमा कंपनी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – किसी वाणिज्यिक उद्यम या व्यक्ति को केवल इस कारण कि वह वाणिज्यिक उद्यम है अधिनियम में परिभाषित 'उपभोक्ता' या 'व्यक्ति' पद की परिभाषा से अपवर्जित नहीं किया गया है और प्रत्येक मामले की परीक्षा उसके तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर की जानी चाहिए और यह अवधारण किया जाना आवश्यक है कि बीमा की सेवा का गहरा और प्रत्यक्ष संबंध लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से या उसका प्रमुख आशय या प्रयोजन बीमाकृत या उसके हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ को सृजित करने के लिए सुकर बनाना तो नहीं है और यह पाए जाने पर कि बीमा पालिसी हानि/नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए ली गई थी और लाभ सृजित करने का कोई तत्व मौजूद नहीं है, तो

बीमा कंपनी द्वारा बीमाकृत को अधिनियम में परिभाषित उपभोक्ता के अंतर्गत आने के कारण ऐसे वाणिज्यिक उद्यम के क्षतिपूर्ति के दावे से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 1 मैसर्स हलसोलिया मोटर्स, यानों के विक्रय के कारबार में लगी एक वाणिज्यिक इकाई, ने कार्यालय, शोरूम, गैरेज, शोरूम परिसर में पड़ी मशीनरी आदि को कवर करने के लिए अपीलार्थी बीमा कंपनी से अग्नि बीमा पालिसी ली थी । तारीख 28 फरवरी, 2002 को अग्नि के कारण (गोधरा दंगों के दौरान) प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के माल को नुकसान कारित किया गया । प्रत्यर्थी सं. 1 के दावे से इनकार किया गया । प्रत्यर्थी ने राज्य आयोग के समक्ष परिवाद फाइल किया । प्रत्यर्थी की शिकायत यह थी कि तारीख 28 फरवरी, 2002 को गोधरा दंगों के दौरान उनके पूर्वोक्त परिसर नष्ट कर दिए गए थे । प्रत्यर्थी मैसर्स हलसोलिया मोटर्स, एक भागीदारी फर्म, द्वारा इस कारित हुई नुकसानी के प्रतिकर के लिए राज्य आयोग के समक्ष एक परिवाद इस आधार पर संस्थित किया गया कि गोधरा घटना, जो तारीख 27 फरवरी, 2000 को घटी थी, के पश्चात् दंगे भड़के जिसके परिणामस्वरूप 28 फरवरी, 2002 को दंगाइयों द्वारा लगाई गई आग से परिवादी के माल को नष्ट किया गया और प्रत्यर्थी/परिवादी बीमा पालिसी के अधीन बीमित राशि की क्षतिपूर्ति किए जाने का हकदार है । राज्य आयोग ने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आता है और अभिनिर्धारित किया कि परिवादी परिसरों से लाभ कमाने के लिए कारबार करने वाली कंपनी होने के कारण "वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" पद के अंतर्गत आती है और परिवाद अधिनियम, 1986 के उपबंधों के अधीन संधार्य नहीं है । प्रत्यर्थी-बीमाकृत द्वारा राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील फाइल करने पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या किसी वाणिज्यिक इकाई द्वारा ली गई बीमा पालिसियों को वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए सेवाएं भाड़े पर लिया जाना अभिनिर्धारित किया जा सकता है और अधिनियम, 1986 के उपबंधों से तद्द्वारा अपवर्जित हैं, आयोग ने अधिनियम, 1986 के

उपबंधों और अधिनियम, 1986 की धारा क्रमश: 2(1)(घ) और 2(1)(ण) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" और "सेवा" पदों की परिभाषा को दोहराते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि "किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" प्रयुक्त अभिव्यक्ति का यह अर्थ है कि क्रय किया गया माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का किसी क्रियाकलाप में उपयोग करने का प्रत्यक्ष रूप से आशय लाभ कमाने का होना चाहिए और लाभ वाणिज्यिक प्रयोजन का मुख्य उद्देश्य है, किंतु ऐसे मामले में जहां किसी क्रियाकलाप में क्रय किए गए माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का आशय लाभ कमाना नहीं है वहां यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन नहीं होगा और यह अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति जो परिकल्पित जोखिम कवर करते हुए कारित वास्तविक हानि की क्षतिपूर्ति के लिए बीमा पालिसी लेता है उसका मामूली तौर पर आशय लाभ कमाना नहीं होता है और तद्नुसार यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी/परिवादी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन एक "उपभोक्ता" है और उसकी प्रेरणा पर फाइल किए गए परिवाद की राज्य आयोग द्वारा इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर परीक्षा की जाए/विनिश्चित किया जाए । अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से राष्ट्रीय आयोग के निर्णय को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में परिभाषित "उपभोक्ता" शब्द के अंतर्गत वह व्यक्ति नहीं आता है, जो माल की दशा में ऐसे माल को पुन:विक्रय के लिए या किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अभिप्राप्त करता है, या सेवा की दशा में, ऐसी सेवाओं का किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए उपभोग करता है । उपरोक्त परिभाषा के साथ संलग्न स्पष्टीकरण में यह कहा गया है कि "वाणिज्यिक प्रयोजन" के अंतर्गत क्रेता द्वारा ऐसे माल का उपयोग अथवा सेवा या सेवाओं का उपभोग सम्मिलित नहीं है जो उसके द्वारा स्व-नियोजन से अपनी जीविका उपार्जन के प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से किया जाता है । यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 2(1)(ड) में "व्यक्ति" को परिभाषित किया गया है और अन्य प्रवर्गों के अतिरिक्त कोई फर्म, चाहे रजिस्ट्रीकृत है या

नहीं, किसी इस विभेद के बिना कि वह बड़ी है या छोटी इसके अंतर्गत आती है । इसी प्रकार, धारा 2(1)(ण) में परिभाषित "सेवा" के अंतर्गत बैंककार, बीमा आता है और यदि बैंककार/बीमा आदि के मामले में सेवा में कमी है तो इस तथ्य के अध्यधीन रहते हुए कि वह धारा 2(1)(घ) के अधीन एक उपभोक्ता है, ऐसे उपभोक्ता को अधिनियम, 1986 की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए सदैव उपचार उपलब्ध है । इस प्रकार, न तो किसी वाणिज्यिक उद्यम को या किसी ऐसे व्यक्ति को जो अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(ड) में परिभाषित "व्यक्ति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आता है, केवल इस कारण कि यह एक वाणिज्यिक उद्यम है "उपभोक्ता" पद की परिभाषा से ऐसा अपवर्जन नहीं किया गया है । इसके विपरीत, कोई फर्म चाहे रजिस्ट्रीकृत है या नहीं, एक ऐसी व्यक्ति है जो सदैव अधिनियम, 1986 की अधिकारिता का अवलंब ले सकता है बशर्ते वह अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति की व्याप्ति और परिधि के अंतर्गत आता हो । जो अवधारित किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या बीमा सेवा का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से एक गहरा और प्रत्यक्ष संबंध है और क्या संव्यवहार के लिए प्रमुख आशय या प्रमुख प्रयोजन क्रेता और/या उनके हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ के सृजन को सुकर बनाने के लिए था । यह तथ्य कि बीमाकृत एक वाणिज्यिक उद्यम है, इस अवधारण के लिए असंबद्ध है कि क्या बीमा पालिसी पर अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के क्षेत्र के भीतर एक वाणिज्यिक प्रयोजन के रूप में विचार किया जाएगा या नहीं । पूर्वोक्त कसौटी को लागू करते हुए दो बातें निकलकर आती हैं (i) क्या माल पुन: विक्रय के लिए या वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए खरीदा जाता है ; या (ii) क्या सेवाओं का उपभोग किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए किया जाता है । यह दोहरा वर्गीकरण वाणिज्यिक प्रयोजन और गैर-वाणिज्यिक प्रयोजन का है । यदि माल पुन: विक्रय के लिए या वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए क्रय किया जाता है, तब अधिनियम, 1986 की व्याप्ति से ऐसा उपभोक्ता अपवर्जित हो जाएगा । उदाहरण के लिए, यदि कोई विनिर्माता जो उत्पाद 'क' का उत्पादन कर रहा है, ऐसे उत्पादन के लिए उसे वस्तुएं खरीदने की आवश्यकता हो सकती है जो कच्चा माल हो सकता है, तब

ऐसी वस्तुओं की खरीद वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए होगी । इसके विपरीत, यदि वही विनिर्माता अपने निवास या यहां तक कि अपने कार्यालय के लिए रेफ्रिजरेटर, टेलीविजन या एयर-कंडीशनर का क्रय करता है तो इसका लाभ सृजित करने से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध नहीं है, इसे वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और पूर्व-उल्लिखित कारण से वह अधिनियम, 1986 के अधीन उपभोक्ता अधिकरण में समावेदन करने के योग्य है । इसी प्रकार, एक अस्पताल जो एक चिकित्सा व्यवसायी की सेवाओं को भाड़े पर लेता है, तो यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन होगा किंतु यदि कोई व्यक्ति अपने रुग्णता के लिए ऐसी सेवाओं का उपभोग करता है, तो इसे गैर-वाणिज्यिक प्रयोजन अभिनिर्धारित किया जाना होगा । "किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" शब्दों का व्यापक अर्थ लेने पर इसका यह अर्थ होगा कि क्रय किए गए माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का उपयोग किसी क्रियाकलाप में प्रत्यक्ष रूप से लाभ सृजित करने के आशय के लिए होना चाहिए । लाभ वाणिज्यिक प्रयोजन का मुख्य उद्देश्य है किंतु ऐसे मामले में जहां क्रय किया गया माल या भाड़े पर ली गई सेवाएं ऐसा क्रियाकलाप है जिसका प्रत्यक्ष रूप से आशय लाभ सृजित करना नहीं है, तो यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन नहीं होगा । इस प्रकार, अंतत: जो निष्कर्ष निकलकर आता है वह यह है कि हर मामले की परीक्षा उसके स्वयं के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर की जानी चाहिए और जो परीक्षा की जानी चाहिए वह यह है कि क्या कोई क्रियाकलाप या संव्यवहार लाभ सृजित करने हेतु वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए है या नहीं और कोई ऐसा कठोर सिद्धांत नहीं हो सकता जिसे अपनाया जा सके और प्रत्येक मामले की परीक्षा उन व्यापक सिद्धांतों के आधार पर की जानी चाहिए जो इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किए गए हैं, जिन पर विस्तार से चर्चा की गई है । वर्तमान मामले में उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए जो अवधारित किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या बीमा सेवा का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से प्रत्यक्ष संबंध था और क्या संव्यवहार का प्रमुख आशय या प्रमुख प्रयोजन बीमाकृत या हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ के सृजन को सुकर बनाने का था और हमारा उत्तर नकारात्मक है

और तद्नुसार हमारा यह मत है कि इस मामले में प्रत्यर्थी-बीमाकृत का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से कोई गहरा या प्रत्यक्ष संबंध नहीं है और बीमा का दावा उस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए है जो प्रत्यर्थी-बीमाकृत को हुई थी और आयोग ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा (2)(1)(घ) के अधीन एक "उपभोक्ता" है । (पैरा 27, 28, 36, 37, 39, 40, 42 और 43)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2022]	(2022) 5 एस. सी. सी. 42 : **श्रीकांत जी. मंत्री** बनाम **पंजाब नेशनल बैंक** ;	35
[2022]	(2022) 6 एस. सी. सी. 1 : **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लेविस स्टार्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** ;	45
[2020]	(2020) 2 एस. सी. सी. 265 : **लीलावती कीर्तिलाल मेहता मेडीकल ट्रस्ट** बनाम **यूनिक शांति डेवलपर्स और अन्य** ;	31, 34
[2018]	(2018) 14 एस. सी. सी. 81 : **पैरामाउंट डिजिटल कलर लैब और अन्य** बनाम **एजीएफए इंडिया प्रा. लि. और अन्य** ;	31
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 79 : **मदन कुमार सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, सुलतानपुर और अन्य** ;	17
[2009]	(2009) 3 एस. सी. सी. 240 : **कर्नाटक पावर ट्रांसमिशन कार्पोरेशन और एक अन्य** बनाम **अशोक आयरन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड** ;	38

[2000] (2000) 1 एस. सी. सी. 512 :
कल्पवृक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट बनाम **तोशिनवाल ब्रदर्स (बंबई) प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** ; 41

[1996] (1996) 9 एस. एस. सी. 422 :
राजीव मेटल वर्क्स और अन्य बनाम **मिनरल एंड मेटल ट्रेडिंग कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड** ; 41

[1995] (1995) 3 एस. सी. सी. 583 :
लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स बनाम **पी. एस. जी. इंडस्ट्रीयल इंस्टीट्यूट ;** 10, 30, 31, 68

[1994] (1994) 1 एस. सी. सी. 243 :
लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम **एम. के. गुप्ता** । 29

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353 (इसके साथ 2007 की सिविल अपील सं. 5354, 2012 की सिविल अपील सं. 2821, 2018 की सिविल अपील सं. 3350).

2004 की प्रथम अपील सं. 159 और 161 में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग, नई दिल्ली द्वारा तारीख 3 दिसंबर, 2004 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री कैलाश वासुदेव, सुनील कुमार, डा. भारत भूषण प्रसून, नकुल दीवान, सुरेन्द्र कुमार, एन. गणपति, ज्येष्ठ अधिवक्तागण, अमित कुमार सिंह, अप्रीतम अनिमेश ठाकुर, (श्रीमती) के. ईनाटोली सेमा, (सुश्री) चुबलेमा चांग, प्रांग न्यूमई, मोज्ज़म खान, (सुश्री) श्वेता साहू, बृजेश उज्जैनवाला, (सुश्री) अनिंदित्ता मित्रा, (सुश्री) अनविता गोयल, (सुश्री) अनन्य गुप्ता, शिवम

सिंह, पी. के. सेठ, (सुश्री) मंजीत चावला, मनीष कुमार, अभिनव सिंह, शिवम सिंह, गोपाल सिंह, प्रेम रंजन कुमार, अवनीश सिन्हा, विनय कुमार मिश्रा, अर्जुन मास्टर्स, सूरज केसरवानी, (सुश्री) सोनम प्रिया, अनुराग मिश्रा, आयुष कुमार सिंह, गगन गुप्ता, विशाल प्रसाद, अभिषेक अत्रे, जे. बी. मुद्गिल, एस. के. शर्मा, प्रद्युमन गोहिल, (श्रीमती) तरुणा सिंह गोहिल, (सुश्री) रानू पुरोहित, अलपति साहित्य कृष्ण, (सुश्री) नोरीन सरना, नील चटर्जी, मयूर आर. शाह, यशपाल ढींगरा, मुकेश वर्मा, पंकज कुमार सिंह, पवन कुमार शुक्ला, कमल कुमार पांडेय, संदीप सी. शाह, राजीव रंजन द्विवेदी, एम. टी. जॉर्ज, (श्रीमती) सुसी अब्राहम, जॉन्स जॉर्ज, एम. जे. पाल, वी. के. खन्ना, हितेश कुमार शर्मा, अखिलेश्वर झा, (सुश्री) निहारिका द्विवेदी, रवीश कुमार गोयल, नरेन्द्र पाल शर्मा, डा. (श्रीमती) विपिन गुप्ता, निखिल गोयल, (सुश्री) नवीन गोयल, आदित्य के. राय, एस. एल. गुप्ता, आशुतोष शर्मा, (सुश्री) गुंजन शर्मा, वीरेन्द्र कुमार शर्मा, अरूप रत्न दत्ता चौधरी, राजीव कुमार देवरा, धर्मपाल सैनी, अब्दुल गफ़ार, मोहन सिंह, सौरभ शर्मा, आयुष पंवार, के. के. चौहान, (सुश्री) शालू शर्मा, ब्रह्म शंकर सौम्या दत्ता, वी. इलांचेझियान, वेंकट सुब्रमण्यम टी. आर., लिखी चंद भौसले,

राहत बंसल, अमित कुमार नैन, पी. आई. जोस, अशोक माथुर, रोहन गणपति, आकृष कामरा, अरुणव पटनायक, (सुश्री) भावना दास, आदित्य मिश्रा, निलेन्दु वात्सयायन, चंद्रभूषण तिवारी, राजेश पी. और मनोरंजन शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी ने दिया ।

न्या. रस्तोगी – 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353

विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई वर्तमान अपीलों में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (जिसे इसमें इसके पश्चात् "राष्ट्रीय आयोग" कहा गया है) द्वारा तारीख 3 दिसंबर, 2004 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा राष्ट्रीय आयोग ने प्रत्यर्थी की प्रेरणा पर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1986" कहा गया है) के अधीन फाइल किए गए परिवाद की संधार्यता के संबंध में गुजरात राज्य उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (जिसे इसमें इसके पश्चात् "राज्य आयोग" कहा गया है) के निष्कर्ष को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति, जो परिकल्पित जोखिम को कवर करने के लिए बीमा पालिसी लेता है, वह वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए पालिसी नहीं लेता है । पालिसी वास्तविक हानि की क्षतिपूर्ति के लिए है और इसका आशय लाभ कमाना नहीं है और अंतत: यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी (बीमाकृत) अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित एक उपभोक्ता है और उसकी प्रेरणा पर फाइल किया गया परिवाद संधार्य है तथा राज्य आयोग द्वारा गुणागुण के आधार पर परीक्षा की जाए ।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 (टाटा यानों का व्यौहारी) और प्रत्यर्थी सं. 2 दावेदार हैं । प्रत्यर्थी सं. 1 ने 75,38,000/- रुपए के कवर के लिए और प्रत्यर्थी सं. 2 ने 90,00,000/- रुपए के कवर के लिए एक अग्नि बीमा पालिसी ली थी । तारीख 28 फरवरी, 2002 को अग्नि के कारण (गोधरा

दंगों के दौरान) प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के माल को नुकसान कारित किया गया । प्रत्यर्थी सं. 1 के दावे से इनकार किया गया जबकि प्रत्यर्थी सं. 2 के दावे को 54,29,871/- रुपए की सीमा तक स्वीकार किया गया । प्रत्यर्थियों ने राज्य आयोग के समक्ष परिवाद फाइल किया ।

3. प्रत्यर्थी सं. 1 मैसर्स हरसोलिया मोटर्स, यानों के विक्रय के कारबार में लगी एक वाणिज्यिक इकाई, ने कार्यालय, शोरूम, गैरेज, शोरूम परिसर में पड़ी मशीनरी आदि को कवर करने के लिए अपीलार्थी बीमा कंपनी से अग्नि बीमा पालिसी ली थी । प्रत्यर्थी की शिकायत यह थी कि तारीख 28 फरवरी, 2002 को गोधरा दंगों के दौरान उनके पूर्वोक्त परिसर नष्ट कर दिए गए थे । प्रत्यर्थी मैसर्स हरसोलिया मोटर्स, एक भागीदारी फर्म, द्वारा इस कारित हुई नुकसानी के प्रतिकर के लिए राज्य आयोग के समक्ष एक परिवाद इस आधार पर संस्थित किया गया कि गोधरा घटना, जो तारीख 27 फरवरी, 2000 को घटी थी, के पश्चात् दंगे भड़के जिसके परिणामस्वरूप 28 फरवरी, 2002 को दंगाइयों द्वारा लगाई गई आग से परिवादी के माल को नष्ट किया गया और प्रत्यर्थी/परिवादी बीमा पालिसी के अधीन बीमित राशि की क्षतिपूर्ति किए जाने का हकदार है ।

4. राज्य आयोग ने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आता है और अभिनिर्धारित किया कि परिवादी परिसरों से लाभ कमाने के लिए कारबार करने वाली कंपनी होने के कारण "वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" पद के अंतर्गत आती है और परिवाद अधिनियम, 1986 के उपबंधों के अधीन संधार्य नहीं है ।

5. प्रत्यर्थी-बीमाकृत द्वारा राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील फाइल करने पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या किसी वाणिज्यिक इकाई द्वारा ली गई बीमा पालिसियों को वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए सेवाएं भाड़े पर लिया जाना अभिनिर्धारित किया जा सकता है और अधिनियम, 1986 के उपबंधों से तद्द्वारा अपवर्जित हैं, आयोग ने अधिनियम, 1986 के उपबंधों और अधिनियम, 1986 की धारा क्रमश: 2(1)(घ) और 2(1)(ण) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" और "सेवा" पदों की परिभाषा को

दोहराते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि "किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" प्रयुक्त अभिव्यक्ति का यह अर्थ है कि क्रय किया गया माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का किसी क्रियाकलाप में उपयोग करने का प्रत्यक्ष रूप से आशय लाभ कमाने का होना चाहिए और लाभ वाणिज्यिक प्रयोजन का मुख्य उद्देश्य है, किंतु ऐसे मामले में जहां किसी क्रियाकलाप में क्रय किए गए माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का आशय लाभ कमाना नहीं है वहां यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन नहीं होगा और यह अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति जो परिकल्पित जोखिम कवर करते हुए कारित वास्तविक हानि की क्षतिपूर्ति के लिए बीमा पालिसी लेता है उसका मामूली तौर पर आशय लाभ कमाना नहीं है और तद्नुसार तारीख 3 दिसंबर, 2004 के आक्षेपित निर्णय के अधीन यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी/परिवादी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन एक "उपभोक्ता" है और उसकी प्रेरणा पर फाइल किए गए परिवाद की राज्य आयोग द्वारा इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर परीक्षा की जाए/विनिश्चित किया जाए, अपीलार्थी बीमा कंपनी की प्रेरणा पर इस न्यायालय के समक्ष अपील में चुनौती की विषयवस्तु है ।

6. इस न्यायालय द्वारा तारीख 15 अप्रैल, 2005 सूचनाएं जारी करते हुए आक्षेपित निर्णय के प्रवर्तन और प्रभाव पर रोक लगाई गई थी । इसके परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी की प्रेरणा पर फाइल किए गए परिवाद की राज्य आयोग द्वारा अभी तक गुणागुण के आधार पर परीक्षा नहीं की गई है ।

7. अपीलों के अन्य समूह को भी, जिनकी राष्ट्रीय आयोग के निर्णय से उद्भूत 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम हरसोलिया मोटर्स और अन्य) के साथ सुनवाई की गई थी, तारीख 3 दिसंबर, 2004 के आक्षेपित निर्णय का अवलंब लेते हुए उन्हीं सिद्धांतों को लागू करते हुए अपीलार्थी-बीमाकर्ता की प्रेरणा पर हमारे समक्ष चुनौती दी गई है ।

8. मुख्य विवाद्यक जो हमारे विचार के लिए प्रकट होता है वह यह है कि क्या प्रत्यर्थी-बीमाकृत (वाणिज्यिक उद्यम) द्वारा ली गई बीमा पालिसी "वाणिज्यिक प्रयोजन" के लिए सेवाएं भाड़े पर लेने की कोटि में

आती है और तद्द्वारा अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति के क्षेत्र से अपवर्जित हो जाती है या नहीं ।

9. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि बीमा के सभी मामलों को अधिनियम, 1986 की परिधि के क्षेत्र के भीतर व्यापक रूप से सम्मिलित नहीं किया जा सकता और यदि इसके प्रत्यक्ष महत्व पर विचार किया जाए, तो इससे वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 2015" कहा गया है) के उपबंध निरर्थक हो जाएंगे और यह दलील दी कि अधिनियम, 2015 की धारा 2(1)(XX) में वाणिज्यिक विवादों की परिधि के भीतर बीमा और पुन: बीमा सम्मिलित हैं ।

10. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि **लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स** बनाम **पी. एस. जी. इंडस्ट्रीयल इंस्टीट्यूट**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इस विषय पर विधि की परीक्षा की गई और यह अभिनिर्धारित किया गया कि "वाणिज्यिक प्रयोजन" की जांच पड़ताल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उस प्रयोजन पर विचार करने के लिए की जानी चाहिए जिस प्रयोजन के लिए माल और सेवा की खरीद या उपभोग किया जाता है । यदि इसका उपभोग लाभ के हेतु के साथ बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक क्रियाकलाप करने की दृष्टि से किया जाता है, तो क्रेता को एक उपभोक्ता के रूप में नहीं माना जाएगा और अधिनियम, 1986 लागू नहीं होगा और इस न्यायालय के इस मत की पश्चात्वर्ती निर्णयों में सतत् रूप से अभिपुष्टि की गई है ।

11. विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि आयोग ने अपने अंतिम दूसरे पैरा में बीमा की ऐसी पालिसी को स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1986 के क्षेत्र के भीतर लिया है और इसके परिणामस्वरूप संव्यवहार की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना जब कभी बीमा की पालिसी के प्रति निर्देश करके प्रतिकर के लिए दावा किया जाना है, तो ऐसे परिवाद अधिनियम, 1986 के अधीन संधार्य हो जाएंगे ।

---

[1] (1995) 3 एस. सी. सी. 583.

12. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि कारबार इकाइयों द्वारा बीमा की संविदाओं को अभिप्राप्त करने का प्रमुख प्रयोजन लाभ कमाना है और इस प्रकार इसके साथ इनका गहरा और प्रत्यक्ष संबंध होता है और तद्नुसार ये इकाइयां संक्षिप्त कार्यवाहियों की ईप्सा करते हुए उपभोक्ता न्यायालय के समक्ष दावा फाइल करने के हकदार नहीं हैं और वर्तमान विवाद छोटे-मोटे असंतुष्ट उपभोक्ता से संबंधित नहीं हैं, जो व्यक्तिगत उपयोग के लिए मोबाइल खो जाने के लिए बीमा के दावे की ईप्सा कर रहा हो, या आटो रिक्शा ड्राइवर का दावा नहीं है जो एक खराब इंजन को ठीक कराने के लिए उपगत खर्चों के लिए दावा करने की ईप्सा कर रहा हो क्योंकि वह उसकी आजीविका के अंतर्गत आता है । प्रस्तुत विवाद बड़े पैमाने पर कारबार करने वाली इकाइयों से संबंधित है जो अपने कारबारों के संचालन से जुड़े जोखिमों के संरक्षण के लिए बीमा कंपनियों के साथ वाणिज्यिक करार करते हैं । यदि उन्हें अधिनियम, 1986 के अधीन एक उपभोक्ता के रूप में अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, तो इससे विधायी प्रज्ञा का वह अधिदेश ही विफल हो जाएगा जिसके अनुसरण में यह अधिनियम अधिनियमित किया गया है ।

13. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि चयन का सिद्धांत उस मुकदमेबाज के लिए उपलब्ध नहीं है जो बीमा की संविदा से व्यथित है क्योंकि अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019 की धारा 2(7) में "वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" सेवाओं के उपबंधों को उपभोक्ता न्यायालयों की परिधि से विनिर्दिष्ट रूप से अपवर्जित किया गया है और एकमात्र उपचार अधिनियम, 2015 के अधीन वाणिज्यिक न्यायालयों में स्थित है ।

14. विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि यदि वाणिज्यिक क्रियाकलापों के लिए बीमा को अधिनियम, 1986 की परिधि के अंतर्गत आने के लिए इसके प्रतिकूल दलील को स्वीकार किया जाए, तो किसी वाणिज्यिक क्रियाकलाप के लिए कोई सेवा यहां तक कि वाणिज्यिक उद्यम के लिए लाभ उत्पन्न करने को सुकर बनाने के लिए अभिप्राप्त करना भी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथापरिभाषित

"उपभोक्ता" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आ जाएगा और इसके कारण अनधिसंभाव्यता पैदा होगी क्योंकि यह वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सेवा के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध होगा और उसके अतिक्रमण से सिविल कार्यवाही उत्पन्न होती है न कि उपभोक्ता प्रतितोष की कार्यवाही ।

15. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि यदि बीमा को अधिनियम के अर्थांतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा सेवा का उपभोग करने के रूप में प्रत्यर्थी की दलील को स्वीकार किया जाए, तो इससे संपूर्ण देश में उपभोक्ता विवादों की बाढ़-सी आ जाएगी और इसके परिणामस्वरूप न केवल सामाजिक और आर्थिक रूप से फायदाप्रद विधान का यथार्थ भाव और आशय विफल हो जाएगा, बल्कि बीमा कंपनी द्वारा लिए जाने वाले प्रीमियमों में अनवधानतापूर्वक बढ़ोत्तरी हो जाएगी जो पुन: अधिनियम के संपूर्ण आशय के लिए सहायक होगा क्योंकि वास्तविक उपभोक्ताओं को, जो नियमित रूप से सेवाओं का उपभोग करते हैं, उसी कवरेज के लिए अधिक संदाय करना होगा और इस बात पर उद्देश्य और कारणों के कथन से विचार किया जा सकता है जो वर्ष 2002 में संशोधन करने के प्रयोजनार्थ ध्यान में रखा गया था ।

16. विद्वान् काउंसेल ने अंत में यह दलील दी कि बीमा पालिसी क्रय करने का सीधा संबंध बड़े पैमाने के उद्यम के वाणिज्यिक क्रियाकलाप के साथ है । दूसरे शब्दों में, बीमा पालिसी आग, भूकंप या किसी अन्य बीमाकृत संकट से उद्भूत हानि के लिए कंपनी की क्षतिपूर्ति करती है । बीमा कंपनी द्वारा जो प्रतिपूर्ति की जाती है वह हानि की प्रतिपूर्ति है और हानि का प्रत्यक्ष रूप से अंत:संबंध कंपनी के वाणिज्य से है और इसलिए किसी हानि की प्रतिपूर्ति की ईप्सा करते हुए परिवाद तब उपभोक्ता न्यायालय के समक्ष संधार्य नहीं होगा यदि यह इस मामले में प्रत्यर्थी जैसी एक बड़े पैमाने की वाणिज्यिक इकाई द्वारा फाइल किया जाता है और राष्ट्रीय आयोग द्वारा अधिनियम, 1986 के उपबंधों का किया गया निर्वचन न केवल इस न्यायालय के निर्णयों के प्रतिकूल है अपितु यह अन्यथा विधिक रूप से संधार्य नहीं है और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना चाहिए ।

17. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि बीमा पालिसी कवर का क्रय विशिष्ट जोखिम की क्षतिपूर्ति करने की संविदा होती है न कि ऐसे कृत्य से लाभ कमाने/हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए कुछ करने या न करने की संविदा नहीं होती है । यदि विशिष्ट घटना अर्थात् आग, बाढ़ इत्यादि से अनुध्यात जोखिम घटित नहीं होता है, तब पालिसी कवर के नकदीकरण का कोई प्रश्न नहीं है और यदि ऐसा घटित होता है तो जो संदेय किया जाना है वह अग्रिम तौर पर संदत्त प्रीमियम के विरुद्ध जोखिम की रकम है । इन परिस्थितियों में, बीमा पालिसी की प्रस्थापना/क्रय मूल रूप से लाभ कमाने के लिए नहीं किया जाता है बल्कि अकल्पित जोखिम को कवर करने के लिए किया जाता है, इसलिए पालिसी कवर का क्रय वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए नहीं है भले ही इसे वाणिज्यिक उद्यम द्वारा क्रय किया जाए और वाणिज्यिक प्रयोजन क्या है यह न केवल कई शब्दकोशों में परिभाषित है अपितु इस न्यायालय के निर्णयों में भी परिभाषित किया गया है और यह दलील दी कि यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम, 1986 में केवल "वाणिज्यिक प्रयोजन" के लिए किसी संव्यवहार को वर्जित किया गया है किंतु इसमें किसी वाणिज्यिक उद्यम को एक उपभोक्ता होना वर्जित नहीं किया गया है और इसलिए वाणिज्यिक उद्यम एक क्रेता/उपभोक्ता हो सकता है और एक उपभोक्ता के रूप में अपने अधिकारों को प्रवर्तित करा सकता है, बशर्ते वाणिज्यिक उद्यम द्वारा ऐसे संव्यवहार से लाभ सृजित करने का अव्यवहित आशय न हो, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **मदन कुमार सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, सुलतानपुर और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

18. विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किए गए किसी संव्यवहार को यहां तक कि लाभ कमाने के अव्यवहित आशय के बिना भी "वाणिज्यिक प्रयोजन" के लिए नहीं समझा जा सकता, अन्यथा वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किए गए सभी संव्यवहारों को, चाहे उनका लाभ सृजित करने से दूर का संबंध हो या न

---

[1] (2009) 9 एस. सी. सी. 79.

हो, वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए समझा जाएगा । उदाहरण के लिए, एक कंपनी अपने कर्मकारों या किसी अजनबी/बाह्य व्यक्ति के लिए मुफ्त में जल की पूर्ति करने के लिए - या दीवारों को दुरुस्त करने के लिए थोक में रोगन के डिब्बे इत्यादि की खरीद करती है तो उसका इसमें से लाभ कमाने का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है । इस प्रकार, एक जल संयंत्र की खरीद को वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए नहीं समझा जा सकता, अन्यथा वास्तव में वाणिज्यिक उद्यम द्वारा किए गए सभी संव्यवहार वाणिज्यिक प्रयोजन का रूप ले लेंगे और यदि विधानमंडल का ऐसा आशय रहा होता, तो उसके द्वारा "उपभोक्ता" शब्द की परिभाषा भिन्न रूप में दी गई होती – "कोई व्यक्ति" की बजाय "वाणिज्यिक उद्यमों से भिन्न कोई व्यक्ति" प्रयुक्त किया गया होता, किंतु कानून में प्रज्ञापूर्वक वाणिज्यिक प्रयोजन से वाणिज्यिक संव्यवहार को कवर किया जाना अनुज्ञात किया गया है । अत: वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किए गए संव्यवहारों को स्वत: अधिनियम, 1986 के अधीन पूरी तरह से अपवर्जन किया गया नहीं समझा जा सकता ।

19. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और उनकी सहायता से अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

20. हमारे विचार के लिए उठाए गए विवाद्यक की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होने से पूर्व अधिनियम, 1986 पर एक विहंगम दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा ।

21. अधिनियम, 1986 एक सामाजिक फायदाप्रद विधान है और इसलिए न्यायालय को अधिनियम के उपबंधों का अर्थान्वयन करते समय एक रचनात्मक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । अधिनियम, 1986 की प्रस्तावना से शुरुआत करते हैं, जिससे विधायी आशय का अभिनिश्चय करने के लिए उपयोगी सहायता मिल सकती है । इसे उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए उपबंध करने हेतु अधिनियमित किया गया था । "संरक्षण" शब्द का प्रयोग अधिनियम के रचयिताओं के मन की मूल भावना को प्रस्तुत करता है । विभिन्न परिभाषाओं और उपबंधों, जिनमें इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विस्तारपूर्वक प्रयत्न किया गया है, का निर्वचन इस आलोक में और इस स्थिर विधि से विचलन

किए बिना किया जाना चाहिए कि कोई प्रस्तावना किसी उपबंध की अन्यथा स्पष्ट भाषा को नियंत्रित नहीं कर सकती है ।

22. वास्तव में, यह विधि सामान्य जन को ऐसे अन्याय से संरक्षण करने की लंबे समय से महसूस की जा रही आवश्यकता को पूरा करती है जिसके लिए सामान्य विधि के अधीन उपचार विभिन्न कारणों से भ्रांतिपूर्ण बन गया । राज्य के हस्तक्षेप को अनुज्ञात करते हुए और उपभोक्ताओं के हितों की संरक्षा करने के लिए विभिन्न विधान और विनियम बेइमान व्यक्तियों के लिए एक आश्रय बन गए क्योंकि प्रवर्तन मशीनरी या तो काम नहीं करती या अप्रभावी रूप से और अकुशलतापूर्वक कार्य करती है और जो कारण हैं उनका उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

23. अधिनियम का महत्व समाज के कल्याण की अभिवृद्धि करने के लिए उपभोक्ता को प्रत्यक्ष रूप से बाजार अर्थव्यवस्था में सहभागी बनने में समर्थ बनाना है । "उपभोक्ता", "सेवा", "व्यापारी", "अनुचित व्यापारिक व्यवहार" जैसी विभिन्न परिभाषाओं की संवीक्षा से उपदर्शित होता है कि विधानमंडल ने अधिनियम की व्याप्ति और पहुंच को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है । इन परिभाषाओं में से प्रत्येक दो भागों में है, एक स्पष्टीकारक और दूसरी समावेशी । स्पष्टीकारक या मुख्य भाग में ही विस्तृत अभिव्यक्तियों का इसके व्यापक विस्तार को स्पष्ट रूप से उपदर्शित करते हुए प्रयोग किया गया है जिनसे स्पष्ट रूप से ऐसी बातों को, जो अन्यथा इसके स्वाभाविक प्रभाव से परे रह गई होती, इसकी परिधि के भीतर लाया गया है ।

24. इस प्रकार, अधिनियम, 1986 के उपबंधों का अर्थान्वयन इस अधिनियमिति के प्रयोजन की प्राप्ति के लिए उपभोक्ता के पक्ष में किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक सामाजिक फायदाप्रद विधान है । ऐसे अधिनियम के उपबंधों का अर्थान्वयन करते हुए न्यायालय/आयोग का यह प्राथमिक कर्तव्य एक रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना है और यह इस बात के अध्यधीन है कि इससे उपबंधों की भाषा का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए और अधिनियमिति के प्रयत्नशील उद्देश्य के प्रतिकूल न हो ।

25. धारा 2(1)(घ) में "उपभोक्ता", धारा 2(1)(ङ) में "व्यक्ति" और धारा 2(1)(ण) में "सेवा" को परिभाषित किया गया है, जो हमारे समक्ष उठाए गए विवादास्पद प्रश्न की परीक्षा करने के लिए सुसंगत हैं, उन्हें इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**2. परिभाषाएं–** इस अधिनियम में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –
>
> .....
>
> (घ) "**उपभोक्ता**" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो–
>
> (i) किसी ऐसे प्रतिफल के लिए जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागत: संदाय किया गया है और भागत: वचन दिया गया है, या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन किसी माल का क्रय करता है, और इसके अंतर्गत ऐसे किसी व्यक्ति से भिन्न, जो ऐसे प्रतिफल के लिए जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागत: संदाय किया गया है या भागत: वचन दिया गया है या आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन माल का क्रय करता है या ऐसे माल का कोई प्रयोगकर्ता भी है, जब ऐसा प्रयोग ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन से किया जाता है किंतु इसके अंतर्गत ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो माल को पुन: विक्रय या किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अभिप्राप्त करता है; और
>
> (ii) किसी ऐसे प्रतिफल के लिए जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागत: संदाय किया गया है और भागत: वचन दिया गया है, या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन सेवाओं को भाड़े पर लेता है या उनका उपभोग करता है और इसके अंतर्गत ऐसे किसी व्यक्ति से भिन्न जो ऐसे किसी प्रतिफल के लिए जिसका संदाय किया गया है और वचन दिया गया है और भागत: संदाय किया गया है और भागत: वचन दिया गया है या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन सेवाओं को भाड़े पर लेता है या

उनका उपभोग करता है, ऐसी सेवाओं का कोई हिताधिकारी भी है जब ऐसी सेवाओं का उपभोग प्रथम वर्णित व्यक्ति के अनुमोदन से किया जाता है;

स्पष्टीकरण – उपखंड (i) के प्रयोजनों के लिए 'वाणिज्यिक प्रयोजन' के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे माल या सेवाओं का उपयोग नहीं है जिन्हें वह स्व-नियोजन द्वारा अपनी जीविका उपार्जन के प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से लाया है और जिनका उसने उपयोग किया है और उसने जो सेवाएं प्राप्त की हैं;

.....

'**व्यक्ति**' के अंतर्गत है :–

(i) कोई फर्म चाहे रजिस्ट्रीकृत हो या न हो;

(ii) हिंदू अविभक्त कुटुंब;

(iii) सहकारी सोसाइटी;

(iv) व्यक्तियों का प्रत्येक अन्य संगत चाहे वह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो या न हो;

.....

(ण) 'सेवा' से किसी भी प्रकार की कोई सेवा अभिप्रेत है जो उसके संभावित प्रयोगकर्ताओं को उपलब्ध कराई जाती है और इसके अंतर्गत बैंककारी, वित्तपोषण, बीमा, परिवहन, प्रसंस्करण, विद्युत या अन्य ऊर्जा के प्रदाय, बोर्ड या निवास अथवा दोनों, गृह निर्माण, मनोरंजन आमोद-प्रमोद या समाचार या अन्य जानकारी पहुंचाने के संबंध में सुविधाओं का प्रबंध भी है किंतु इसके अंतर्गत नि:शुल्क या व्यक्तिगत सेवा संविदा के अधीन सेवा का किया जाना नहीं है ।"

26. उपभोक्ता शब्द अधिनियम का आधार है । चूंकि अधिनियम

माल में खराबी या सेवा में कोई कमी दो धारणाओं पर आधारित है, उपभोक्ता वह है जो कोई माल खरीदता है या कोई सेवा भाड़े पर लेता है । इस प्रकार, "उपभोक्ता" पद की परिभाषा में व्यक्ति से अभिप्रेत है जो –

(क) क्रेता है, या

(ख) क्रेता के अनुमोदन से प्रश्नगत माल का उपयोगकर्ता है, या

(ग) भाड़े पर लेने वाला या अन्यथा उपभोग करने वाला व्यक्ति है, या

(घ) ऐसे पूर्वोक्त व्यक्तियों के अनुमोदन से सेवा या प्रश्नगत सेवाओं का इस शर्त के साथ हिताधिकारी है कि माल का ऐसा क्रय या किसी ऐसी सेवा को भाड़े पर लेना या उपभोग करना ऐसे प्रतिफल के लिए है जिसका –

(i) संदाय किया गया है, या

(ii) वचन दिया गया है, या

(iii) भागत: संदाय किया गया है या वचन दिया गया है, या

(iv) आस्थगित संदाय की किसी पद्धति के अंतर्गत आता है ।

27. तथापि, इस प्रकार परिभाषित "उपभोक्ता" शब्द के अंतर्गत वह व्यक्ति नहीं आता है, जो माल की दशा में ऐसे माल को पुन: विक्रय के लिए या किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अभिप्राप्त करता है, या सेवा की दशा में, ऐसी सेवाओं का किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए उपभोग करता है । उपरोक्त परिभाषा के साथ संलग्न स्पष्टीकरण में यह कहा गया है कि "वाणिज्यिक प्रयोजन" के अंतर्गत क्रेता द्वारा ऐसे माल का उपयोग या सेवा अथवा सेवाओं का उपभोग सम्मिलित नहीं है जिन्हें वह स्व-नियोजन द्वारा अपनी जीविका उपार्जन के प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से किया गया है ।

28. यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 2(1)(ड) में "व्यक्ति" को परिभाषित किया गया है और अन्य प्रवर्गों के अतिरिक्त कोई फर्म, चाहे रजिस्ट्रीकृत है या नहीं, किसी इस विभेद के बिना कि वह बड़ी है या

छोटी इसके अंतर्गत आती है । इसी प्रकार, धारा 2(1)(ण) में परिभाषित "सेवा" के अंतर्गत बैंककार, बीमा आता है और यदि बैंककार/बीमा आदि के मामले में सेवा में कमी है तो इस तथ्य के अध्यधीन रहते हुए कि वह धारा 2(1)(घ) के अधीन एक उपभोक्ता है, ऐसे उपभोक्ता को अधिनियम, 1986 की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए सदैव उपचार उपलब्ध है ।

29. **लखनऊ विकास प्राधिकरण** बनाम **एम. के. गुप्ता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने अधिनियम के अधीन यथा परिभाषित "उपभोक्ता" की अवधारणा पर विचार किया और अधिनियम के संदर्भ में इस परिभाषा का विश्लेषण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "3. ..... यह दो भागों में है । पहला भाग माल के संबंध में है और दूसरा सेवाओं के संबंध में । दोनों भागों में पहले विस्तृत अभिव्यक्तियों का प्रयोग करके माल और सेवाओं का अर्थ घोषित किया गया है । समावेशी खंड का प्रयोग करके उनकी व्याप्ति को और विस्तृत किया गया है । उदाहरण के लिए, केवल माल का क्रेता या सेवाओं को भाड़े पर लेने वाला ही नहीं अपितु वे व्यक्ति भी इसके अंतर्गत आते हैं जो उस व्यक्ति के अनुमोदन से जो माल का क्रय करता है या सेवाओं को भाड़े पर लेता है, के अनुमोदन से माल का उपयोग करता है या जो सेवाओं के हिताधिकारी हैं । विधानमंडल ने न केवल 'परिवाद', 'परिवादी', 'उपभोक्ता' को परिभाषित करने के लिए पूर्वावधानी बरती है अपितु खंड (द) में विस्तृत परिभाषा देते हुए विस्तार से यह उल्लेख करने में भी पूर्वावधानी बरती है कि अनुचित व्यापारिक व्यवहार क्या होगा और यहां तक कि खंड (च) और (छ) द्वारा 'त्रुटि' और 'कमी' को भी परिभाषित करने में पूर्वावधानी बरती है जिसके लिए कोई उपभोक्ता आयोग के पास समावेदन कर सकता है । इस प्रकार, अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ता, जिसे वाणिज्यिक अर्थ में माल के क्रेता के रूप में और बृहत्तर अर्थ में सेवाओं के उपयोगकर्ता के रूप में

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 243.

समझा जाता है, के आर्थिक हित की संरक्षा करना है । माल और सेवाओं की सामान्य विशेषताएं यह हैं कि वे लागत को पाटने के लिए और माल के विक्रेता या सेवाओं के प्रदाता के लिए लाभ या आय सृजित करने के लिए एक मूल्य पर प्रदाय की जाती हैं । किंतु एक में त्रुटि और दूसरे में कमी को दूर किया जा सकता है और अलग-अलग प्रकार से क्षतिपूर्ति की जा सकती है । माल को प्रसामान्यत: बदला जा सकता है और मरम्मत की जा सकती है जबकि सेवाओं को मूल्य के ठीक समतुल्य या हानि के लिए नुकसानी अधिनिर्णीत करके क्षतिपूर्ति किए जाने की आवश्यकता होगी .....।"

30. बाद में, **लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने असंशोधित रूप में "उपभोक्ता" के गुणार्थक विस्तार और एक संशोधन द्वारा "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति के साथ जोड़े गए स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए यह विनिर्णय किया कि यह स्पष्टीकरण स्पष्टीकारक प्रकृति का है और संशोधन अधिनियम, 1993 द्वारा जोड़े गए स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए "उपभोक्ता" पद की परिभाषा की विस्तारपूर्वक परीक्षा की, जो निम्नलिखित है :–

"11. अब धारा 2(घ) में 'उपभोक्ता' अभिव्यक्ति की परिभाषा पर वापस आते हैं, जहां तक इस अपील के प्रयोजन के लिए सुसंगत है, उपभोक्ता से अभिप्रेत है (i) कोई व्यक्ति जो प्रतिफल के लिए कोई माल क्रय करता है; यह अतात्विक है कि प्रतिफल का संदाय किया जाता है या वचन दिया जाता है, या भागत: संदाय किया गया है और भागत: वचन दिया जाता है, या प्रतिफल की रकम को आस्थगित किया जाता है; (ii) कोई व्यक्ति जो उस व्यक्ति के अनुमोदन से ऐसे माल का प्रयोग करता है जो ऐसे माल को प्रतिफल के लिए क्रय करता है; (iii) किंतु इसके अंतर्गत वह व्यक्ति नहीं आता है जो ऐसे माल को पुन: विक्रय या किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए क्रय करता है । 'पुन: विक्रय' अभिव्यक्ति पर्याप्त स्पष्ट है । तथापि, संविवाद 'वाणिज्यिक प्रयोजन' अभिव्यक्ति के अर्थ के संबंध में उद्भूत हुआ है । इसे भी

अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । किसी परिभाषा के अभाव में, हमें इसके मामूली अर्थ पर विचार करना चाहिए । 'वाणिज्यिक' 'वाणिज्य से संबंधित' का द्योतक है (चेम्बर का 20वीं शताब्दी का शब्दकोश); इससे अभिप्रेत है 'वाणिज्य' से संबद्ध, या में कार्यरत; वाणिज्या; मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना' (कोलिंस इंग्लिश डिक्शनरी) जबकि 'वाणिज्य' शब्द से अभिप्रेत है 'वित्तीय संव्यवहार विशेष रूप से वाणिज्या का बड़े पैमाने पर क्रय और विक्रय' (कंसाइज आक्सफोर्ड डिक्शनरी) । यह प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय आयोग सतत् रूप से यह दृष्टिकोण अपना रहा है कि जहां कोई व्यक्ति 'लाभ कमाने के प्रयोजन के लिए किसी क्रियाकलाप को चलाने के लिए ऐसे माल का प्रयोग करने की दृष्टि से बड़े पैमाने पर' माल का क्रय करता है, तो वह अधिनियम की धारा 2(घ)(i) के अंर्थांतर्गत एक 'उपभोक्ता' नहीं होगा । उक्त दृष्टिकोण की मोटे तौर पर अभिपुष्टि करने के लिए और विशिष्ट रूप से किसी भ्रांति को दूर करने की इस दृष्टि से कि 'बड़े पैमाने पर' अभिव्यक्ति एक अति स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं है – संसद् ने कदम उठाते हुए अध्यादेश/संशोधन अधिनियम, 1993 द्वारा धारा 2(घ)(i) में स्पष्टीकरण जोड़ा । इस स्पष्टीकरण में 'वाणिज्यिक प्रयोजन' अभिव्यक्ति के क्षेत्र से कतिपय प्रयोजनों को अपवर्जित किया गया – यह एक अपवाद के अपवाद का मामला है । आइए इसका सविस्तार उल्लेख करें : कोई व्यक्ति जो एक टाइपराइटर या एक कार खरीदता है और उनका अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए प्रयोग करता है, वह निश्चित रूप से एक उपभोक्ता है किंतु कोई व्यक्ति जो एक टाइपराइटर या एक कार प्रतिफल के लिए दूसरों का टंकण कार्य करने के लिए या कार को टैक्सी के रूप में चलाने के लिए खरीदता है तो टाइपराइटर/कार को एक वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाना कहा जा सकता है । तथापि, स्पष्टीकरण में यह स्पष्ट किया गया है कि कतिपय स्थितियों में 'वाणिज्यिक प्रयोजन' के लिए माल का क्रय करना फिर भी क्रेता को 'उपभोक्ता' अभिव्यक्ति की परिभाषा से बाहर नहीं ले जाएगा । यदि वाणिज्यिक प्रयोग स्वयं क्रेता द्वारा स्व-नियोजन से अपनी

आजीविका के उपार्जन के प्रयोजन के लिए है तो फिर भी वह एक 'उपभोक्ता' है । ऊपर दिए गए दृष्टांत में, यदि क्रेता स्वयं टाइपराइटर पर कार्य करता है या कार को स्वयं एक टैक्सी के रूप में चलाता है, तो वह एक उपभोक्ता होना बंद नहीं होगा । दूसरे शब्दों में, यदि माल का क्रेता उनका प्रयोग स्वयं करता है अर्थात् स्व-नियोजन से अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए करता है, तो इसे 'वाणिज्यिक प्रयोजन' के रूप में नहीं समझा जाएगा और वह अधिनियम के प्रयोजनार्थ एक उपभोक्ता होना बंद नहीं होगा । 'वाणिज्यिक प्रयोजन' क्या है, स्पष्टीकरण इस प्रश्न को प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किए जाने वाले तथ्य के प्रश्न के रूप में परिवर्तित करता है । जो मायने रखता है वह माल का मूल्य नहीं अपितु वह प्रयोजन है जिसके लिए खरीदे गए माल को प्रयोग किया जाता है । स्पष्टीकरण में प्रयुक्त किए गए कई शब्दों अर्थात् 'उनका स्वयं प्रयोग करता है', 'अनन्य रूप से अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए' और 'स्व-नियोजन से' संसद् का यह आशय पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि क्रय किए गए माल का क्रेता द्वारा स्वयं के लिए, अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए स्वयं को नियोजित करके प्रयोग किया जाना चाहिए । हम जो कहना चाहते हैं कुछ और दृष्टांतों से उस पर बल दिया जा सकेगा । कोई व्यक्ति जो एक आटो-रिक्शा भाड़े पर अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए इसे स्वयं के लिए क्रय करता है तो वह एक उपभोक्ता होगा । इसी प्रकर, एक ट्रक का क्रेता जो इसे स्वयं पब्लिक कैरियर के रूप में चलाने के लिए खरीदता है, तो वह एक उपभोक्ता होगा । कोई व्यक्ति जो अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए एक खराद मशीन या अन्य मशीन इसे स्वयं चलाने के लिए क्रय करता है तो वह एक उपभोक्ता होगा । (उपरोक्त दृष्टांतों में यदि ऐसा क्रेता यान या मशीनरी का संचालन करने के लिए अपनी सहायता/मदद करने के लिए एक या दो व्यक्तियों की सहायता लेता है, तो वह एक उपभोक्ता होना बंद नहीं हो जाएगा) । इसके विपरीत, कोई व्यक्ति जो एक आटो-रिक्शा, एक कार या एक खराद मशीन या अन्य मशीन अनन्य रूप

से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा चलाए जाने या संचालित किए जाने के लिए क्रय करता है, जो वह एक उपभोक्ता नहीं होगा । स्पष्टीकरण में 'उसके द्वारा प्रयोग करने के लिए', और 'स्व-नियोजन से' अभिव्यक्तियों से निष्कर्षित यह आवश्यक सीमा है । अन्य दो शब्दों द्वारा 'अपनी आजीविका के उपार्जन के प्रयोजन के लिए' शब्दों के अर्थ में अस्पष्टता को स्पष्ट और साफ किया गया है ।"

और 1993 के संशोधन के पश्चात् 'उपभोक्ता' की परिभाषा का उचित विश्लेषण करने के पश्चात् अंतत: यह अभिनिर्धारित किया गया :–

"21. अत: हमें अवश्य यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि :

(i) तारीख 18 जून, 1993 से प्रभावी 1993 का उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम सं. 50 (1993 के अध्यादेश सं. 24 को प्रतिस्थापित करते हुए) स्पष्टीकारक प्रकृति का है और सभी लंबित कार्यवाहियों पर लागू होता है ।

(ii) क्या वह प्रयोजन जिसके लिए किसी व्यक्ति ने माल खरीदा है, वह अधिनियम की धारा 2(घ) में 'उपभोक्ता' अभिव्यक्ति की परिभाषा के अर्थांतर्गत एक 'वाणिज्यिक प्रयोजन' है या नहीं, सदैव एक तथ्य का प्रश्न है जिसका विनिश्चय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किया जाएगा ।

(iii) कोई व्यक्ति जो माल क्रय करता है और उनका प्रयोग अनन्य रूप से स्व-नियोजन से अपनी आजीविका के उपार्जन के प्रयोजन के लिए स्वयं करता है तो वह 'उपभोक्ता' अभिव्यक्ति की परिभाषा के भीतर आता है ।"

31. **लीलावती कीर्तिलाल मेहता मेडीकल ट्रस्ट** बनाम **यूनिक शांति डेवलपर्स और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इस विषय पर

[1] (2020) 2 एस. सी. सी. 265.

विधि की प्रतिपादना पर आगे विचार किया गया था जिसमें हममें से एक (न्यायमूर्ति रस्तोगी) एक सदस्य थे और विचार के लिए उद्भूत प्रश्न यह था कि क्या लीलावती कीर्तिलाल मेहता मैडीकल ट्रस्ट अस्पताल द्वारा नियोजित नर्सों के लिए आवास मुहैया कराने के प्रयोजन के लिए फ्लैटों का क्रय करना वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए सेवाओं का क्रय करने के अंतर्गत आता है या नहीं और क्या अस्पताल न्यास अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन "उपभोक्ता" की परिभाषा से अपवर्जित था, इस न्यायालय ने अधिनियम, 1986 की स्कीम पर पुनर्विचार करने और **लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स** (उपर्युक्त) वाले मामले, जिसका **पैरामाउंट डिजिटल कलर लैब और अन्य** बनाम **एजीएफए इंडिया प्रा. लि. और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया गया था और अवलंब लिया गया था, में पूर्व-निर्णय पर पुनर्विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति क्या एक उपभोक्ता है या नहीं या वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अन्य क्रियाकलाप सदैव प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

32. ऐसा मामला हो सकता है कि किसी व्यक्ति ने, जो वाणिज्यिक क्रियाकलापों में लगा है, माल का क्रय या सेवा का उपभोग अपने व्यक्तिगत उपयोग या उपभोग के लिए या किसी हिताधिकारी के व्यक्तिगत उपयोग के लिए किया है और ऐसा क्रय उनके लाभ सृजित करने वाले साधारण क्रियाकलापों से संबद्ध या स्व-नियोजन सृजित करने के लिए नहीं है, तो ऐसा व्यक्ति फिर भी एक उपभोक्ता होने का दावा कर सकता है और विभिन्न दृष्टांतों की चर्चा करने के पश्चात् उन व्यापक सिद्धांतों का उल्लेख करने के पश्चात् चर्चा का सार प्रस्तुत किया जो यह अवधारण करने के लिए निकाले गए थे कि क्या क्रियाकलाप या संव्यवहार किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए है या नहीं और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "19. उपरोक्त चर्चा से यह सार निकलता है कि यद्यपि एक कठोर सिद्धांत हर मामले में नहीं अपनाया जा सकता, यह

---

[1] (2018) 14 एस. सी. सी. 81.

अवधारण करने के लिए कि क्या क्रियाकलाप या संव्यवहार 'वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए' है या नहीं, निम्नलिखित व्यापक सिद्धांत निकाले जा सकते हैं :

19.1 क्या कोई संव्यवहार वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए है या नहीं, यह प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । तथापि, आम तौर पर जिसे 'वाणिज्यिक प्रयोजन' समझा जाता है उसमें विनिर्माण/औद्योगिक क्रियाकलाप या वाणिज्यिक इकाइयों के बीच कारबार-से-कारबार संव्यवहार सम्मिलित है ।

19.2 माल या सेवा के क्रय का लाभ-सृजन क्रियाकलाप के साथ गहरा और प्रत्यक्ष संबंध होना चाहिए ।

19.3 क्रय करने वाले व्यक्ति की पहचान या संव्यवहार का मूल्य इस प्रश्न के लिए निश्चायक नहीं है कि क्या यह किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए है या नहीं । यह देखा जाना चाहिए कि क्या संव्यवहार के लिए प्रमुख आशय या प्रमुख प्रयोजन क्रेता और/या उनके हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ के सृजन को सुकर बनाने के लिए था ।

19.4 यदि यह पाया जाता है कि माल या सेवा का क्रय करने के पीछे का प्रमुख प्रयोजन क्रेता के और/या उनके हिताधिकारी के व्यक्तिगत उपयोग और उपभोग के लिए था, या अन्यथा किसी वाणिज्यिक क्रियाकलाप से संबंध नहीं है, तो इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या ऐसा क्रय 'स्व-नियोजन से आजीविका सृजित करने' के प्रयोजन के लिए था या नहीं ।"

33. इस न्यायालय ने पाया कि छात्रावास संबंधी सुविधाएं लीलावती अस्पताल द्वारा नियोजित नर्सों को मुहैया कराई गई थी किंतु परियोजना के पूर्ण होने के कुछ समय पश्चात् भवन की गुणवत्ता अभिकथित रूप से घटिया होने के कारण संरचना जीर्ण-शीर्ण हो गई और नर्सिंग स्टाफ को उनके द्वारा प्रयोग किए जा रहे फ्लैटों को खाली करना पड़ा और लीलावती अस्पताल द्वारा किराए की वार्षिक हानि के कारण

प्रतिकर के लिए फाइल किया गया उपभोक्ता परिवाद क्या संधार्य था और क्या न्यास (ट्रस्ट) अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के अधीन एक उपभोक्ता था ।

34. **लीलावती कीर्तिलाल मेहता मेडिकल ट्रस्ट** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी न्यास (ट्रस्ट) द्वारा फ्लैटों का क्रय करने और इसके लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप के बीच कोई संबंध नहीं है क्योंकि फ्लैटों को अस्पताल के भीतर कोई चिकित्सीय/निदानात्मक सुविधाओं के लिए नहीं, अपितु अस्पताल द्वारा नियोजित नर्सों को आवासीय सुविधा देने के लिए अधिभोग में लिया गया था । प्रस्तुत परिस्थितियों में, नर्सों को सुविधाएं मुहैया कराने में लाभ कमाने की बात से कोई लेना-देना नहीं था और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यास विचाराधीन संव्यवहार के लिए अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन एक "उपभोक्ता" है ।

35. इस प्रकार, जो महत्वपूर्ण है वह संव्यवहार है जिसके संदर्भ में किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा अधिनियम, 1986 के अधीन दावा फाइल किया गया है जो अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अंतर्गत स्वयं को "उपभोक्ता" होने का दावा करता है, इस विषय पर विधि की ऐसी प्रतिपादना को इस न्यायालय द्वारा हाल ही में **श्रीकांत जी. मंत्री** बनाम **पंजाब नेशनल बैंक**[1] वाले मामले में फिर से दोहराया गया और इस विषय का विश्लेषण करने तथा **लीलावती कीतिलाल मेहता मेडीकल ट्रस्ट** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जिसके प्रतिनिर्देश किया गया है, इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करने के पश्चात् प्रश्नगत तथ्यों के आधार पर मामले की परीक्षा की और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रश्नगत संव्यवहार अधिनियम, 1986 के अधीन अधिकारिता का अवलंब लेने के प्रयोजनार्थ "उपभोक्ता" या "सेवा" पद की परिभाषा के अंतर्गत आएगा ।

36. इस प्रकार, निकाला गया निष्कर्ष यह है कि न तो किसी वाणिज्यिक उद्यम को या किसी ऐसे व्यक्ति को जो अधिनियम, 1986

---

[1] (2022) 5 एस. सी. सी. 42.

की धारा 2(1)(ड) में परिभाषित "व्यक्ति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आता है, केवल इस कारण कि यह एक वाणिज्यिक उद्यम है "उपभोक्ता" पद की परिभाषा से ऐसा अपवर्जन नहीं किया गया है । इसके विपरीत, कोई फर्म चाहे रजिस्ट्रीकृत है या नहीं, एक ऐसी व्यक्ति है जो सदैव अधिनियम, 1986 की अधिकारिता का अवलंब ले सकता है बशर्ते वह अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन यथा परिभाषित "उपभोक्ता" अभिव्यक्ति की व्याप्ति और परिधि के अंतर्गत आता हो ।

37. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले को लागू करते हुए जो अवधारित किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या बीमा सेवा का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से एक गहरा और प्रत्यक्ष संबंध है और क्या संव्यवहार के लिए प्रमुख आशय या प्रमुख प्रयोजन क्रेता और/या उनके हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ के सृजन को सुकर बनाने के लिए था । यह तथ्य कि बीमाकृत एक वाणिज्यिक उद्यम है, इस अवधारण के लिए असंबद्ध है कि क्या बीमा पालिसी पर अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के क्षेत्र के भीतर एक वाणिज्यिक प्रयोजन के रूप में विचार किया जाएगा या नहीं ।

38. **कर्नाटक पावर ट्रांसमिशन कार्पोरेशन और एक अन्य** बनाम **अशोक आयरन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए यह मत व्यक्त किया था :–

> "17. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी शब्द या अभिव्यक्ति का निर्वचन पाठ और संदर्भ पर निर्भर होना चाहिए । विधानमंडल द्वारा 'के अंतर्गत आता है' शब्द का आश्रय लेना प्राय: विधानमंडल के इस आशय को दर्शित करता है कि वह ऐसी अभिव्यक्ति को व्यापक और विस्तृत अर्थ देना चाहता था । तथापि, कभी-कभी संदर्भ से यह सुझाव मिल सकता है कि 'के अंतर्गत आता है' शब्द की परिकल्पना 'अभिप्रेत है' अर्थ देने के लिए की जा सकती है । किसी अधिनियमिति का विन्यास, संदर्भ और उद्देश्य ऐसी अधिनियमिति के प्रयोजनों के लिए 'के अंतर्गत

[1] (2009) 3 एस. सी. सी. 240.

आता है' शब्द के निर्वचन के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन दे सकता है ।

18. धारा 2(1)(ड), जो चार प्रवर्गों में प्रणित है अर्थात्

(i) कोई फर्म चाहे रजिस्ट्रीकृत है या नहीं;

(ii) हिंदू अविभक्त कुटुंब;

(iii) सहकारी सोसाइटी; और

(iv) व्यक्तियों का प्रत्येक अन्य संगम चाहे वह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो या न हो, को 'व्यक्ति' को परिभाषित करते समय इन चार प्रवर्गों तक प्रतिबंधित और सीमित होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि इन निबंधनों में यह नहीं कहा जा सकता है कि 'व्यक्ति' का अर्थ एक या अन्य वस्तु होगा जो प्रगणित हैं अपितु यह कि उनमें यह 'सम्मिलित' होगा ।

19. साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(42) में 'व्यक्ति' को परिभाषित किया गया है –

'3(42) 'व्यक्ति' के अंतर्गत कोई कंपनी या संगम या व्यक्तियों का निकाय, चाहे निगमित है या नहीं, आते हैं ;'

20. अधिनियम, 1986 की धारा 3, जिसका केपीटीसी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया है, में यह उपबंधित है कि अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अतिरिक्त हैं न कि अल्पीकरण में । इस उपबंध से केपीटीसी की दलील की मदद होने की बजाय बल्कि यह इंगित होता है कि 1986 के अधिनियम के अधीन उपबंधित उपचार तक पहुंच तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त है । इससे किसी प्रकार से 'व्यक्ति' की परिभाषा को निर्बंधित करने के लिए कोई संकेत नहीं मिलता है ।

21. धारा 2(1)(ड), सभी प्रश्नों से परे, एक निर्वचन खंड है और विधानमंडल का आशय 'व्यक्ति' अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन

करते हुए इस पर उसी प्रकार विचार किए जाने का रहा है जैसी कि यह धारा 2(1)(घ) में है, विधानमंडल का आशय कभी भी कंपनी जैसे विधिक व्यक्ति को अपवर्जित करने का नहीं रहा था । वस्तुत:, इसमें सूचीबद्ध रूप में वर्णित चारों प्रवर्गों, प्रवर्ग (i), (ii) और (iv) अनिगमित हैं और प्रवर्ग (iii) निगमित है, में निगमित निकाय के साथ-साथ अनिगमित निकाय को सम्मिलित करने के उसके आशय का सूचक हैं । धारा (2)(1)(ड) में 'व्यक्ति' की परिभाषा समावेशी है न कि सर्वांगीण । हमें यह प्रतीत नहीं होता है कि इस बात पर कोई संदेह किया जाए कि कंपनी धारा 2(1)(ड) के साथ पठित धारा 2(1)(घ) के अर्थांतर्गत एक व्यक्ति है और हम तद्नुसार अभिनिर्धारित करते हैं ।"

39. पूर्वोक्त कसौटी को लागू करते हुए दो बातें निकलकर आती हैं – (i) क्या माल पुन: विक्रय के लिए या वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए खरीदा जाता है ; या (ii) क्या सेवाओं का उपभोग किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए किया जाता है । यह दोहरा वर्गीकरण वाणिज्यिक प्रयोजन और गैर-वाणिज्यिक प्रयोजन का है । यदि माल पुन: विक्रय के लिए या वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए क्रय किया जाता है, तब अधिनियम, 1986 की व्याप्ति से ऐसा उपभोक्ता अपवर्जित हो जाएगा । उदाहरण के लिए, यदि कोई विनिर्माता जो उत्पाद 'क' का उत्पादन कर रहा है, ऐसे उत्पादन के लिए उसे वस्तुएं खरीदने की आवश्यकता हो सकती है जो कच्चा माल हो सकता है, तब ऐसी वस्तुओं की खरीद वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए होगी । इसके विपरीत, यदि वही विनिर्माता अपने निवास या यहां तक कि अपने कार्यालय के लिए रेफ्रिजरेटर, टेलीविजन या एयर-कंडीशनर का क्रय करता है तो इसका लाभ सृजित करने से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध नहीं है, इसे वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और पूर्व-उल्लिखित कारण से वह अधिनियम, 1986 के अधीन उपभोक्ता अधिकरण में समावेदन करने के योग्य है ।

40. इसी प्रकार, एक अस्पताल जो एक चिकित्सा व्यवसायी की सेवाओं को भाड़े पर लेता है, तो यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन होगा किंतु

यदि कोई व्यक्ति अपने रुग्णता के लिए ऐसी सेवाओं का उपभोग करता है, तो इसे गैर-वाणिज्यिक प्रयोजन अभिनिर्धारित किया जाना होगा । "किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए" शब्दों का व्यापक अर्थ लेने पर इसका यह अर्थ होगा कि क्रय किए गए माल या भाड़े पर ली गई सेवाओं का उपयोग किसी क्रियाकलाप में प्रत्यक्ष रूप से लाभ सृजित करने के आशय के लिए होना चाहिए । लाभ वाणिज्यिक प्रयोजन का मुख्य उद्देश्य है किंतु ऐसे मामले में जहां क्रय किया गया माल या भाड़े पर ली गई सेवाएं ऐसा क्रियाकलाप है जिसका प्रत्यक्ष रूप से आशय लाभ सृजित करना नहीं है, तो यह एक वाणिज्यिक प्रयोजन नहीं होगा ।

41. दूसरे शब्दों में, इसे और स्पष्ट करने के लिए हमारे पास इस बारे में कतिपय दृष्टांत हैं कि क्या संव्यवहार वाणिज्यिक प्रयोजन के अंतर्गत आता है या क्या परिवादी को अधिनियम, 1986 की व्याप्ति और परिधि के अंतर्गत "उपभोक्ता" अभिनिर्धारित किया जा सकता है ।

(i) एक पूर्त न्यास द्वारा एक सीटी स्केन मशीन खरीदी गई थी और वह त्रुटियुक्त पाई गई थी, प्रश्न यह पैदा हुआ कि क्या मशीनरी एक वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए खरीदी गई थी और क्या अपीलार्थी एक उपभोक्ता था । **कल्पवृक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट** बनाम **तोशिनवाल ब्रदर्स (बंबई) प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने वर्णित तथ्यों से यह अभिनिर्धारित किया कि पूर्त न्यास (चेरिटेबल ट्रस्ट) द्वारा मशीन वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए खरीदी गई थी क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को, जो सीटी स्केन करवाता है, इसके लिए संदाय करना पड़ता है और दी जाने वाली सेवाएं मुफ्त नहीं हैं और इस प्रकार न्यास एक उपभोक्ता नहीं था ।

(ii) **राजीव मेटल वर्क्स और अन्य** बनाम **मिनरल एंड मेटल ट्रेडिंग कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड**[2] वाले मामले में एक विनिर्माता ने कानूनी प्राधिकरण जो विनिर्माण और तैयार उत्पाद के विक्रय के लिए व्यवस्था करने वाले अभिकरण के रूप में कार्य करता था, के माध्यम से

---

[1] (2000) 1 एस. सी. सी. 512.

[2] (1996) 9 एस. सी. सी. 422.

कच्ची सामग्री का आयात किया था । अपीलार्थी ने यह अभिकथन करते हुए राष्ट्रीय आयोग के समक्ष समावेदन किया कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी द्वारा मांग की गई अपेक्षित मात्रा का प्रदाय नहीं किया था । इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि खरीद एक वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए थी और विनिर्माता अधिनियम, 1986 के प्रयोजन के लिए एक "उपभोक्ता" नहीं था ।

(iii) बैंक, जिसने बीमा कंपनी से बैंककार क्षतिपूर्ति बीमा पालिसी ली थी, को उसकी शाखाओं में से एक शाखा में कुछ संव्यवहारों के कारण हानि कारित हुई, उसने यह कथन करते हुए बीमा दावा किया कि यह हानि शाखा प्रबंधक की बेईमानी के कारण हुई है और बीमा कंपनी द्वारा दावे से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि अभिकथित हानि शाखा प्रबंधक की किसी न किसी बेईमानी के कारण हुई थी और यह वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए होने के कारण एक उपभोक्ता नहीं हो सकता ।

(iv) परिवादी नैदानिक क्लीनिक चलाने वाली एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है और उसने यह अभिकथन किया कि परिवादी द्वारा विरोधी पक्षकार से खरीदी गई एक्स-रे मशीन त्रुटियुक्त थी । यदि यह आक्षेप किया जाता है कि चूंकि मशीन वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए खरीदी गई थी और परिवादी को अधिनियम, 1986 के अधीन परिभाषित अनुसार एक उपभोक्ता होना नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसे वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए नियोजित किया गया था और लाभ के लिए कारबार कर रहा था इसलिए वास्तव में परिवादी अधिनियम, 1986 के अधीन एक उपभोक्ता नहीं है ।

(v) एक कंपनी ने वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए कंपनी के कारबार के बेहतर प्रबंधन हेतु ईपीबीएक्स सिस्टम खरीदा और अभिकथित रूप से त्रुटियुक्त सिस्टम प्रदाय करने के लिए फाइल किया गया परिवाद अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के स्पष्टीकारक खंड के अंतर्गत नहीं आ सकेगा क्योंकि इस संव्यवहार का लाभ सृजित करने से कोई संबंध नहीं है ।

42. इस प्रकार, अंतत: जो निष्कर्ष निकलकर आता है वह यह है कि हर मामले की परीक्षा उसके स्वयं के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर की जानी चाहिए और जो परीक्षा की जानी चाहिए वह यह है कि क्या कोई क्रियाकलाप या संव्यवहार लाभ सृजित करने हेतु वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए है या नहीं और कोई ऐसा कठोर सिद्धांत नहीं हो सकता जिसे अपनाया जा सके और प्रत्येक मामले की परीक्षा उन व्यापक सिद्धांतों के आधार पर की जानी चाहिए जो इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किए गए हैं, जिन पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

43. वर्तमान मामले में उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए जो अवधारित किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या बीमा सेवा का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से प्रत्यक्ष संबंध था और क्या संव्यवहार का प्रमुख आशय या प्रमुख प्रयोजन बीमाकृत या हिताधिकारी के लिए किसी प्रकार के लाभ के सृजन को सुकर बनाने का था और हमारा उत्तर नकारात्मक है और तद्नुसार हमारा यह मत है कि इस मामले में प्रत्यर्थी-बीमाकृत का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से कोई गहरा या प्रत्यक्ष संबंध नहीं है और बीमा का दावा उस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए है जो प्रत्यर्थी-बीमाकृत को हुई थी और आयोग ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा (2)(1)(घ) के अधीन एक "उपभोक्ता" है ।

44. हम यह भी दोहराते हैं कि साधारणतया बीमा संविदा की प्रकृति सदैव हानियों की क्षतिपूर्ति करने की होती है । बीमा संविदाएं क्षतिपूर्ति की संविदाएं होती हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति अज्ञात या आकस्मिक घटना से उद्भूत हानि/नुकसान या दायित्व के विरुद्ध दूसरे व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने का वचन देता है और यह केवल किसी आकस्मिकता या भविष्य में होने वाले संभाव्य कार्य के लिए लागू है ।

45. **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लेविस स्टार्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (2022) 6 एस. सी. सी. 1.

"53. बीमा की संविदा परिभाषित हानि की क्षतिपूर्ति के लिए है और सदैव बनी रहेगी, न इससे अधिक और न इससे कम । विनिर्दिष्ट जोखिमों के मामले में, जो आग इत्यादि के कारण हानि से उद्भूत होते हैं, बीमाकृत दोहरे बीमा द्वारा लाभ नहीं ले सकता या फायदा नहीं उठा सकता । बहुत पहले, कास्टेल्लेन **बनाम** प्रेस्टोन [(1883) 11 क्यूबीडी 380] वाले मामले में लार्ड न्यायमूर्ति ब्रेट्ट ने कहा था कि –

> '..... बीमा की संविदा..... एक क्षतिपूर्ति की संविदा है । ..... और इस संविदा से अभिप्रेत है कि बीमाकृत की हानि की दशा में ..... पूरी तरह से क्षतिपूर्ति की जाएगी, किंतु कभी भी पूरी तरह से क्षतिपूर्ति से अधिक नहीं होगी ।'"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

46. इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत मामले में बीमा पालिसी को भाड़े पर लेना स्पष्ट रूप से हानि/नुकसान के जोखिम की क्षतिपूर्ति करने का कार्य है और इसमें लाभ सृजित करने का कोई तत्व नहीं है तथा अभी इस न्यायालय द्वारा जो अभिव्यक्त किया गया है वह दृष्टांत स्वरूप है ; उस संव्यवहार के बारे में जिसके संदर्भ में दावा किया गया है, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर सदैव यह परीक्षा किए जाने की स्वतंत्रता होगी कि दावे का लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से कोई गहरा और प्रत्यक्ष संबंध है ।

47. हम अपीलार्थी की ओर से दी गई इस दलील से सहमत नहीं हैं कि यदि बीमा के दावों को अधिनियम, 1986 के अधीन लाया जाता है, तो वास्तव में सभी बीमा संबंधी मामले अधिनियम, 1986 के क्षेत्र के भीतर आ जाएंगे और इससे अधिनियम, 2015 निरर्थक हो जाएगा । हमारे मत में, इन दोनों अधिनियमों की भिन्न-भिन्न व्याप्ति और परिधि है और भिन्न-भिन्न उपचारात्मक क्रियाविधि है और भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्र में हैं तथा कोई आंतरिक सह-संबंध नहीं है ।

48. परिणामत:, ये अपीलें सार रहित हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

49. राज्य आयोग द्वारा प्रत्यर्थियों के परिवाद का न्याय-निर्णयन उनके स्वयं के गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार किया जाए और चूंकि यह एक पुराना मामला है इसलिए इसे यथासंभव शीघ्रता से, किंतु किसी भी दशा में एक वर्ष के भीतर, विनिश्चित किया जाए ।

50. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई है, का निपटारा हो जाएगा ।

2007 की सिविल अपील सं. 5354 – (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मैसर्स दिवाकर गोयराम पोरखयात)

51. यह अपील राष्ट्रीय आयोग द्वारा तारीख 3 दिसंबर, 2004 को यह अभिनिर्धारित करते हुए पारित किए गए आदेश के विरुद्ध की गई है कि प्रत्यर्थी (वाणिज्यिक इकाई) द्वारा ली गई बीमा पालिसी मामले के तथ्यों को देखते हुए केवल उस हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए थी जो प्रत्यर्थी/परिवादी को हुई है और जिस संव्यवहार के संदर्भ में अपीलार्थी द्वारा बीमा के दावे का निराकृत किया गया है उसका लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था और अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन परिभाषित अनुसार एक "उपभोक्ता" था ।

52. प्रत्यर्थी/परिवादी (बीमाकृत) "खजाना ज्वलेर्स" के नाम और अभिनाम में जेवरात क्रय और विक्रय का कारबार कर रहा है, उसने कारबार में आभूषणों के जोखिम को कवर करने के लिए अपीलार्थी से तारीख 21 अक्तूबर, 1999 से 20 अक्तूबर, 2000 की अवधि के लिए बीमा पालिसी ली थी ।

53. तारीख 24 जून, 2000 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में जब प्रत्यर्थी के एक कर्मचारी ने देखा कि शोरूम का शटर आधा खुला हुआ है और वह चोरी होने का सूचक था और निरीक्षण करने के उपरांत यह पाया गया कि 20,55,200/- रुपए का माल शोरूम से चुरा लिया गया था ।

54. प्रत्यर्थी द्वारा इस कारित हुई हानि की क्षतिपूर्ति के लिए दावा करने पर इसे अपीलार्थी द्वारा निराकृत कर दिया गया और प्रत्यर्थी द्वारा उसे राज्य आयोग, अहमदाबाद के समक्ष एक उपभोक्ता परिवाद

फाइल करके चुनौती दी गई, जिसे तारीख 1 अप्रैल, 2004 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) की व्याप्ति के भीतर एक "उपभोक्ता" नहीं है ।

55. प्रत्यर्थी ने खारिजी के आदेश को राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील करके चुनौती दी गई । आयोग ने संव्यवहार की प्रकृति पर विचार करते हुए और मैसर्स हरसोलिया मोटर्स वाले मामले में आयोग के आदेश का अवलंब लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि जिस संव्यवहार के संदर्भ में प्रत्यर्थी द्वारा बीमा का दावा किया गया है, उसका लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है और बीमा कवर चोरी के कारण या प्राकृतिक आपदा द्वारा कारित होने वाली हानि, यदि कोई हो, को कवर करने के लिए अभिप्राप्त किया गया था और राष्ट्रीय आयोग द्वारा तारीख 3 दिसंबर, 2004 को पारित किया गया आदेश हमारे समक्ष अपील में चुनौती की विषयवस्तु है ।

56. हमारे द्वारा आज 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हरसोलिया मोटर्स और अन्य) में पारित किए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह अपील सारहीन है और तद्नुसार खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

57. परिवाद को राज्य आयोग की फाइल पर प्रत्यावर्तित किया जाता है और इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार न्यायनिर्णयन किया जाए और यथासंभव शीघ्रता से, किंतु किसी भी दशा में एक वर्ष के भीतर, विनिश्चित किया जाए ।

58. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई है, निपटारा हो जाएगा ।

2012 की सिविल अपील सं. 2821 – नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मैसर्स अंकुर और एक अन्य ।

59. अपीलाधीन निर्णय राष्ट्रीय आयोग द्वारा तारीख 15 दिसंबर, 2010 को पारित किया गया है ।

60. इस मामले के तथ्य संक्षेप में ये हैं कि प्रत्यर्थी थोक में वस्त्रों

के कारबार में लगा है, उसने तारीख 6 जनवरी, 2006 से 5 जनवरी, 2007 की अवधि के लिए प्रभावी अग्नि और जोखिम मानक पालिसी कुल 60,00,000/- रुपए की राशि के लिए दी थी । तारीख 28 दिसंबर, 2006 को आग लगने के कारण प्रत्यर्थी का कारखाने को नुकसान पहुंचा । अपीलार्थी ने अंतिम सर्वेक्षण के लिए मैसर्स एपेक्स सर्वेयर्स प्रा. लि. को स्थल सर्वेक्षक नियुक्त किया, जिसने बचे हुए माल के लिए एक लाख रुपए की रकम की कटौती करने के पश्चात् 53,17,790/- रुपए की हानि का निर्धारण करते हुए तारीख 22 दिसंबर, 2008 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और आग के पश्चात् बचा अक्षत स्टाक 51,959/- रुपए का था । अपीलार्थी ने दावा किया कि प्रत्यर्थी निर्धारक को कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत करने में असफल रहा है और इसलिए ऐसे आधार पर निर्धारण को शून्य समझा जा सकता था । इसी बीच केनरा बैंक (प्रतिभूत लेनदार) द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध सारफेसी कार्यवाहियां आरंभ की गईं ।

61. जब प्रत्यर्थी के दावे पर कार्यवाही की जा रही थी, तब प्रत्यर्थी ने ब्याज सहित 60,00,000/- रुपए का दावा करते हुए राज्य आयोग के समक्ष एक परिवाद फाइल किया । इस प्रक्रम पर, अपीलार्थी ने एक आरंभिक आक्षेप फाइल किया कि प्रत्यर्थी अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) की परिभाषा के भीतर एक "उपभोक्ता" नहीं है । राज्य आयोग ने एक प्रक्रम पर अभिनिर्धारित किया था कि प्रत्यर्थी वाणिज्यिक क्रियाकलाप में लगा है और इसलिए उपभोक्ता नहीं है । राज्य आयोग द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को राष्ट्रीय आयोग द्वारा अपने तारीख 15 दिसंबर, 2012 के आदेश के अधीन यह अभिनिर्धारित करते हुए उलट दिया कि वाणिज्यिक इकाई बीमा कंपनी द्वारा उसकी सेवाओं का उपभोग करते हुए संव्यवहार के संदर्भ में अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के निबंधनों के अनुसार एक "उपभोक्ता" है ।

62. हमने 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम हरसोलिया मोटर्स और अन्य) में विस्तृत कारण दिए हैं । हमारे द्वारा आज उक्त अपील में पारित किए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह अपील सारहीन है और तद्नुसार खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

63. परिवाद को राज्य आयोग की फाइल पर प्रत्यावर्तित किया जाता है और इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार न्यायनिर्णयन किया जाए और यथासंभव शीघ्रता से, किंतु किसी भी दशा में एक वर्ष के भीतर, विनिश्चित किया जाए ।

64. हमारे ध्यान में यह लाया गया है कि इस न्यायालय के तारीख 11 मई, 2011 के आदेश के अनुसरण में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा किए गए दावे का 50 प्रतिशत जमा कर दिया है और तारीख 15 फरवरी, 2023 की कार्यालय रिपोर्ट से उपदर्शित होता है कि 59,74,814/- रुपए की रकम का सावधि निक्षेप में विनिधान किया है जिसकी परिपक्वता की तारीख 16 जुलाई, 2023 है । इस रकम को राज्य आयोग के पास अंतरित किया जाए और सावधि निक्षेप में विनिधान की गई धनराशि जारी रहेगी और स्वचालित नवीकरण आधार पर ब्याज वाले लेखे में विनिहित की जा सकती है और पक्षकार राज्य आयोग के आदेशों का पालन करेंगे ।

65. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई हैं, का निपटारा हो जाएगा ।

2018 की सिविल अपील सं. 3350 – बैंक आफ न्यूयार्क मिल्लोन (पूर्व में बैंक आफ न्यूयार्क) बनाम मैसर्स मेटको एक्सपोर्ट इंटरनेशनल और अन्य ।

66. अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर यह अपील राष्ट्रीय आयोग द्वारा तारीख 6 फरवरी, 2018 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की है ।

67. मामले के तथ्य संक्षेप में ये हैं कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने तिल के बीज और तिलहन के पांच कंटेनरों के प्रदाय के लिए 141,375 यूएस डालर के लिए एक तृतीय पक्षकार (प्रत्यर्थी सं. 1 का इटालियन क्रेता) के साथ एक संव्यवहार किया था । इस संव्यवहार के संबंध में बीजक, वहन-पत्र, सर्वेक्षक का प्रमाणपत्र विनिमय पत्र, पादपस्वच्छता प्रमाणपत्र और अन्य संबंधित दस्तावेजों (चार दस्तावेजों) को इटली में क्रेता के बैंककार को भेजने के लिए फेडरल बैंक लि. (प्रत्यर्थी सं. 2) की सेवाएं

ली गई थीं । प्रत्यर्थी सं. 2 ने इटली में क्रेता के बैंककार को आयात संबंधी दस्तावेजों को परिदत्त करने के लिए अपीलार्थी की सेवाएं ली थीं जिसने आगे एक कुरियर कंपनी (प्रत्यर्थी सं. 3) की सेवाएं ली थीं । आयात संबंधी दस्तावेज अभिवहन में गुम हो गए ।

68. प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपीलार्थी, प्रत्यर्थी सं. 2 और प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध राज्य आयोग के समक्ष एक उपभोक्ता परिवाद फाइल किया । परिवाद को तारीख 10 दिसंबर, 2013 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 1 अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(घ) के अधीन परिभाषित अनुसार एक उपभोक्ता नहीं है, यह आदेश प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रेरणा पर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील में चुनौती की विषयवस्तु बना और राष्ट्रीय आयोग ने **लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय का अवलंब लेते हुए और मैसर्स हरसोलिया मोटर्स वाले मामले में के निर्णय पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि बैंक द्वारा उन कागजातों को प्रेषित करने का, जो अभिवहन में गुम हो गए थे और इटली के क्रेता द्वारा कभी प्राप्त नहीं किए गए थे, स्वत: प्रत्यर्थी को कोई लाभ सृजित करने का संबंध नहीं है क्योंकि वास्तविक लाभ आयातित माल का विक्रय करने से आएगा जिसका लाभ सृजित करने के क्रियाकलाप से कोई संबंध नहीं है ।

69. हमारे द्वारा पक्षकारों की ओर से काउंसेलों को सुनने के पश्चात् और इस न्यायालय द्वारा 2007 की सिविल अपील सं. 5352-5353 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेट बनाम हरसोलिया मोटर्स और अन्य) में व्यक्त किए गए मत पर विचार करते हुए यह अपील सारहीन है और तद्नुसार खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

70. परिवाद को राज्य आयोग की फाइल पर प्रत्यावर्तित किया जाता है और इसके स्वयं के गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार न्यायनिर्णयन किया जाए और यथासंभव शीघ्रता से, किंतु किसी भी दशा में एक वर्ष के भीतर, विनिश्चित किया जाए ।

71. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई है, निपटारा हो जाएगा ।

2023 की सिविल अपील (2020 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 1039) – इफ्फको टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम मैसर्स ओपीजी एनर्जी (प्रा.) लि. ।

72. इजाजत दी गई ।

73. अपील के लिए विशेष इजाजत लेकर यह अपील राष्ट्रीय आयोग द्वारा तारीख 27 सितंबर, 2019 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

74. हमने पक्षकारों के काउंसेलों को सुना और तथ्य पर विचार करते हुए आरंभ में उपभोक्ता अधिकरण द्वारा तारीख 12 सितंबर, 2014 को अपीलार्थी के विरुद्ध एक पक्षीय आदेश पारित किया गया था, उसके अनुसरण में अपीलार्थी को परिवाद की तारीख अर्थात् 8 अप्रैल, 2001 से 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 9,57,903/- रुपए और मुकदमेबाजी के मद्दे 5,000/- रुपए का संदाय करने का निदेश दिया गया था । अपीलार्थी की प्रेरणा पर राज्य आयोग और राष्ट्रीय आयोग के समक्ष फाइल की गई अपील/पुनरीक्षण, दोनों को क्रमश: तारीख 25 जून, 2019 और 27 सितंबर, 2019 के आदेशों द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

75. पक्षकारों की ओर से सुनने के पश्चात् हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं और यह अपील तद्नुसार खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

76. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई है, निपटारा हो जाएगा ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

[2023] 2 उम. नि. प. 211

हरभजन सिंह

बनाम

हरियाणा राज्य

[2011 की दांडिक अपील सं. 1480]

25 अप्रैल, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) – धारा 20, 25 और 35 – विनिषिद्ध पदार्थ का अवैध कब्जा – मानसिक दशा की उपधारणा – दोषसिद्धि – सड़क पर एक ट्रक उलटा हुआ पाया जाना और बिखरे पड़े थैलों में स्वापक पदार्थ पाया जाना – दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा अभिकथित रूप से ड्राइवर और क्लीनर को ट्रक से निकलते हुए देखा जाना और ट्रक के स्वामी का नाम बताकर वहां से चले जाना और वापस न आना – पुलिस द्वारा ट्रक और विनिषिद्ध पदार्थ को अभिरक्षा में लिया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा स्वतंत्र साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित किया जाना और ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर को दोषमुक्त किया जाना किंतु ट्रक के स्वामी को ट्रक का पंजीकृत स्वामी होने के आधार पर दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में असफल रहा हो कि अभिगृहीत यान का किसी अवैध क्रियाकलाप के लिए उपयोग यान के स्वामी-अभियुक्त के ज्ञान और सहमति से किया गया था, वहां धारा 35 के अधीन उपधारणा लागू नहीं होगी और अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त की दोषिता से संबंधित आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए अपने आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहने पर अपनी निर्दोषिता को साबित करने का भार अभियुक्त पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता, इसलिए उसकी दोषसिद्धि को विधिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी एक ट्रक का स्वामी था । यह ट्रक तारीख 15 मई, 2000 को 9.00 बजे अपराह्न में हिसार रोड, गांव अग्रोहा में हनुमान मंदिर के निकट पलट गया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट गश्त ड्यूटी पर पुलिस दल को दी गई जानकारी के आधार पर रजिस्ट्रीकृत की गई थी । दो साक्षियों द्वारा पुलिस दल को दी गई जानकारी के अनुसार दुर्घटना तारीख 15 मई, 2000 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में ट्रक के डिवाइडर से टकरा जाने के पश्चात् घटित हुई थी । ड्राइवर और क्लीनर ट्रक से बाहर आए और उक्त साक्षियों द्वारा पूछताछ करने पर उन्होंने अपना नाम जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह बताया । उन्होंने ट्रक के स्वामी का भी नाम हरभजन सिंह के रूप में प्रकट किया । ड्राइवर और क्लीनर फिर ट्रक के स्वामी को बुलाने के बहाने वहां से चले गए किंतु वापस नहीं आए । पुलिस ने इस संदेह के आधार पर कि ट्रक में लदे थैलों में कोई विनिषिद्ध पदार्थ तो नहीं है, उन्हें उतरवाया और उन्हें अभिरक्षा में लिया । नमूने लिए गए और परीक्षण के लिए भेजे गए । अन्वेषण के पश्चात् ट्रक के ड्राइवर, क्लीनर और ट्रक के स्वामी (अपीलार्थी) के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर को दोषमुक्त कर दिया क्योंकि दोनों साक्षियों को, जिन्होंने अभियोजन के अनुसार पुलिस दल को ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर के नाम बताए थे, पक्षद्रोही घोषित किया गया था । तथापि, अपीलार्थी जो ट्रक का पंजीकृत स्वामी था, को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 25 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा गया । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत करने में असफल रहा है कि प्रश्नगत यान का यदि किसी अवैध क्रियाकलाप के लिए उपयोग किया गया था, तो वह अपीलार्थी के ज्ञान और सहमति से किया गया था । यहां तक कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 35 के

अधीन यथा उपबंधित उपधारणा भी लागू नहीं होगी और इसका कारण यह है कि अभियोजन पक्ष आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए अपने आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहा था । इसके अभाव में, यह भार अभियुक्त पर स्थानांतरित नहीं होगा । प्रस्तुत मामले के तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि तारीख 16 मई, 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68 उप निरीक्षक राम मेहर (अभि. सा. 8) द्वारा की गई शिकायत के आधार पर रजिस्ट्रीकृत की गई थी, जो उस समय गश्त ड्यूटी पर था जब ट्रक सं. पीएटी/2029 को उलटे हुए पाया गया था और चूर्ण (पाउडर) के थैले बिखरे पड़े थे । उसे निकटवर्ती स्थान के दो दुकानदारों अर्थात् राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा सूचित किया गया था कि घटना तारीख 15 मई, 2000 को 9.00 बजे अपराह्न में हुई थी । घटना के पश्चात् ड्राइवर और क्लीनर ट्रक की केबिन से बाहर आए और उक्त साक्षियों द्वारा पूछताछ करने पर उन्होंने अपने नाम जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह बताए थे । उन्होंने स्वयं को ट्रक का ड्राइवर और क्लीनर होने का दावा किया था । वे उक्त घटना को ट्रक के स्वामी को सूचित करने के लिए गए थे किंतु वापस नहीं आए । यह संदेह करते हुए कि ट्रक विनिषिद्ध पदार्थ ले जा रहा था, ट्रक और विनिषिद्ध वस्तुओं, दोनों को कब्जे में लिया गया था । ग्यारह अभियोजन साक्षी प्रस्तुत किए गए थे । दो अभियोजन साक्षियों अर्थात् राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) को इस कारण से सुसंगत कहा जा सकता था कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उनके नाम उन साक्षियों के रूप में वर्णित थे जिन्होंने पुलिस दल को ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर के नाम बताए थे । उन्होंने उनकी मौजूदगी में कोई घटना घटित होने और पुलिस दल को कोई बात सूचित करने की बात से इनकार किया । दोनों को पक्षद्रोही घोषित किया गया था । उन्होंने ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर की शनाख्त तक नहीं की थी । अभि. सा. 7 सहायक उप निरीक्षक राम सरूप पुलिस थाना अग्रोहा में उप निरीक्षक राम मेहर (अभि. सा. 8) के साथ तैनात था, जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी । उसने अपने साक्ष्य में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित बातों को दोहराने के अतिरिक्त यह कहा कि तारीख 19 मई, 2000 को बलवान सिंह पुत्र

चतर सिंह, निवासी नई अनाज मंडी, बरवाला ने यह कहा था कि जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह, प्रश्नगत ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर, ने उसके समक्ष यह कहा था कि वे हरभजन सिंह के कहने पर राजस्थान से चूरापोस्त के साथ-साथ पाउडर के 21 थैले लाए थे और उनका ट्रक अग्रोहा में उलट गया है । चूंकि पुलिस दल उनकी तलाश कर रहा है, इसलिए उन्होंने कहा कि उन्हें पुलिस के समक्ष पेश कर दिया जाए । वास्तविकता यह है कि बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह को साक्ष्य में पेश नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा यह मामला स्थापित करने की ईप्सा की गई थी कि ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर ने बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह के समक्ष न्यायिकेत्तर संस्वीकृति की थी । राम मेहर जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी, अभि. सा. 8 के रूप में उपसंजात हुआ था । उसके कथन में भी अपीलार्थी के विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया था । उसने भी अन्वेषण के दौरान अभिलिखित बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह, जिसे साक्ष्य में पेश नहीं किया गया था, के कथन को निर्दिष्ट किया । अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में सभी सुझावों से इनकार किया था । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए संपूर्ण साक्ष्य में इन आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए कि अपराध अपीलार्थी के ज्ञान और सहमति से कारित किया गया था, आरंभिक भार का निर्वहन करने के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई थी । यह ऐसा मामला है जिसमें वह यान के साथ नहीं था और न ही उसे तब घटनास्थल से गिरफ्तार किया गया था जब घटना घटी थी या जब ट्रक और विनिषिद्ध पदार्थ को अभिरक्षा में लिया गया था । उसे मात्र इस आधार पर दोषसिद्ध किया गया था कि वह ट्रक का पंजीकृत स्वामी है । विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा का संपूर्ण भार यान का पंजीकरण स्वामी होने के नाते अपीलार्थी पर डाला था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यान का ड्राइवर और क्लीनर निर्धन होने के कारण स्वामी की मौनानुकूलता के बिना इतनी बड़ी मात्रा में विनिषिद्ध पदार्थ की तस्करी करने का जोखिम नहीं लेंगे और अपीलार्थी को भी अपना आधार स्पष्ट करना चाहिए था । विचारण न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था । प्रस्तुत मामले में, निचले

न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए कारित की गई प्राथमिक गलती यह है कि अभियोजन पक्ष द्वारा आधारभूत तथ्यों को सिद्ध किए बिना अपनी निर्दोषिता को साबित करने का भार उस पर स्थानांतरित करना चाहा गया है । इसलिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि को विधिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है । (पैरा 7, 9, 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2020] (2020) 9 एस. सी. सी. 202 :
गंगाधर उर्फ **गंगाराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 3

[2011] (2011) 11 एस. सी. सी. 653 :
भोला सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 3

[2010] (2010) 15 एस. सी. सी. 369 :
राज्य मार्फत **पुलिस निरीक्षक, स्वापक पदार्थ आसूचना ब्यूरो, मदुरै तमिलनाडु** बनाम **राजंगम** ; 3

[2005] (2005) 4 एस. सी. सी. 146 :
बलविन्द्र सिंह बनाम **सहायक आयुक्त, केंद्रीय सीमा-शुल्क और उत्पाद कर** । 3

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 1480.

2005 की दांडिक अपील सं. 1091 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 14 मई, 2010 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. एन. गोवर्धन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, बृज भूषण और (सुश्री) प्रियंका त्यागी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री दिनेश चंद्र यादव, अपर महाधिवक्ता, समर विजय सिंह, ईश्वर चंद, ए. एस. ऋषि, मनोज गौतम, केशव

मित्तल, (सुश्री) अमृता वर्मा, (सुश्री) सबर्णी सोम, निखिल कुमार और रजत मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजेश बिंदल ने दिया ।

न्या. बिंदल – अपीलार्थी-हरभजन सिंह को विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 18 मई, 2005 को पारित किए गए निर्णय द्वारा स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम" कहा गया है) की धारा 25 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और 10 वर्ष का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । अपील में, उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 14 मई, 2010 के आदेश द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा गया था । इन आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है ।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी एक ट्रक, जिसका पंजीकरण सं. पीएटी/2029 था, का स्वामी था । यह तारीख 15 मई, 2000 को 9.00 बजे अपराह्न में हिसार रोड, गांव अग्रोहा में हनुमान मंदिर के निकट पलट गया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट गश्त ड्यूटी पर पुलिस दल को दी गई जानकारी के आधार पर तारीख 16 मई, 2000 को 4.25 बजे अपराह्न में रजिस्ट्रीकृत की गई थी । दो साक्षियों राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा पुलिस दल को दी गई जानकारी के अनुसार दुर्घटना तारीख 15 मई, 2000 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में ट्रक के डिवाइडर से टकरा जाने के पश्चात् घटित हुई थी । ड्राइवर और क्लीनर ट्रक से बाहर आए और उक्त साक्षियों द्वारा पूछताछ करने पर उन्होंने अपना नाम जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह बताया । उन्होंने ट्रक के स्वामी का भी नाम हरभजन सिंह के रूप में प्रकट किया । ड्राइवर और क्लीनर फिर ट्रक के स्वामी को बुलाने के बहाने वहां से चले गए किंतु वापस नहीं आए । पुलिस ने इस संदेह के आधार पर कि ट्रक में लदे थैलों में कोई विनिषिद्ध पदार्थ तो नहीं है, उन्हें उतरवाया और उन्हें अभिरक्षा में लिया । नमूने लिए गए और परीक्षण के लिए

भेजे गए । अन्वेषण के पश्चात् जोगिन्द्र सिंह, गुरमेल सिंह और अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने जोगिन्द्र सिंह और गुरमेल सिंह को दोषमुक्त कर दिया क्योंकि दोनों साक्षियों को, जिन्होंने अभियोजन के अनुसार पुलिस दल को ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर के नाम बताए थे, पक्षद्रोही घोषित किया गया था । तथापि, अपीलार्थी जो ट्रक का पंजीकृत स्वामी था, को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 25 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को कायम रखा गया ।

3. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दिया गया संक्षिप्त तर्क यह है कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 25 में यह उपबंधित है कि यान के स्वामी को केवल तब दोषसिद्ध किया जा सकता है यदि उसने किसी अपराध को करने के लिए जानते हुए अपने यान का उपयोग करने की अनुज्ञा दी है । अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई मामला सिद्ध नहीं किया गया था । यहां तक कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 35 में यथाउपबंधित उपधारणा भी नहीं की जा सकती है क्योंकि अभियोजन पक्ष आधारभूत तथ्यों को साबित करने के अपने आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहा था । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपीलार्थी के कथन में उसने यह कहा गया था कि ट्रक को रेत लाने के लिए कश्मीर सिंह पुत्र होशियार सिंह को दिया गया था । अपीलार्थी को घटनास्थल से गिरफ्तार नहीं किया था । ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर को पहले ही दोषमुक्त कर दिया गया है और राज्य ने उनकी दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए कोई अपील फाइल नहीं की थी । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में **बलविन्द्र सिंह** बनाम **सहायक आयुक्त, केंद्रीय सीमा-शुल्क और उत्पाद कर**[1], **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक, स्वापक पदार्थ आसूचना ब्यूरो, मदुरै, तमिलनाडु** बनाम

[1] (2005) 4 एस. सी. सी. 146.

राजंगम[1]**, भोला सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] और **गंगाधर** उर्फ **गंगाराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया ।

4. दूसरी ओर, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी अपने इस पक्षकथन को साबित करने में असफल रहा है कि ट्रक का उपयोग किसी अवैध क्रियाकलाप के लिए नहीं किया जा रहा था । ट्रक का स्वामी प्रतिनिधिक रूप से दायी है । यद्यपि उसके द्वारा यह आधार लिया गया था कि ट्रक रेत लाने के लिए दिया गया था, तथापि, उसके द्वारा अपने अभिवाक् को साबित करने के लिए ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था । उपधारणा उसके विरुद्ध जाती है ।

5. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और निर्दिष्ट किए गए सुसंगत अभिलेख का परिशीलन किया ।

6. मामले के मूलभूत तथ्य, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, विवादग्रस्त नहीं हैं । अपीलार्थी, जो ट्रक का पंजीकृत स्वामी है, को घटनास्थल से गिरफ्तार नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा यह मामला बनाया गया था कि जोगिन्द्र सिंह और गुरमेल सिंह ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर थे । यहां तक कि उन्हें भी घटनास्थल से गिरफ्तार नहीं किया गया था । उनकी शनाख्त राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा पुलिस दल को दी गई जानकारी के आधार पर स्थापित की गई थी । तथापि, जब वे न्यायालय में उपसंजात हुए तो उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था । जोगिन्द्र सिंह और गुरमेल सिंह को दोषमुक्त कर दिया गया था । अपीलार्थी ट्रक का स्वामी है । उसे घटनास्थल से गिरफ्तार नहीं किया गया था । स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 25 में यह उपबंधित है कि यदि किसी यान का स्वामी स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध करने के लिए उसका उपयोग किए जाने

---

[1] (2010) 15 एस. सी. सी. 369.

[2] (2011) 11 एस. सी. सी. 653.

[3] (2020) 9 एस. सी. सी. 202.

के लिए जानबूझकर अनुज्ञा देगा, तो वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा ।

7. प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत करने में असफल रहा है कि प्रश्नगत यान का यदि किसी अवैध क्रियाकलाप के लिए उपयोग किया गया था, तो वह अपीलार्थी के ज्ञान और सहमति से किया गया था । यहां तक कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 35 के अधीन यथाउपबंधित उपधारणा भी लागू नहीं होगी और इसका कारण यह है कि अभियोजन पक्ष आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए अपने आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहा था । इसके अभाव में, यह भार अभियुक्त पर स्थानांतरित नहीं होगा ।

8. इस न्यायालय द्वारा इस विवाद्यक पर **भोला सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचार किया गया था । यह राय व्यक्त की गई थी कि जब तक यान का उपयोग इसके स्वामी के ज्ञान और सहमति से नहीं किया जाता है, जो कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 25 की उपयोज्यता के लिए अत्यावश्यक है, तद्धीन दोषसिद्धि को विधिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है । इसके सुसंगत पैराओं को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "8. हमने विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है । हमारा विचार है कि वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 25 लागू नहीं होगी क्योंकि यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि भोला सिंह, अपीलार्थी ने जानते हुए, यान का किसी अनुचित प्रयोजन के लिए उपयोग करने के लिए अनुज्ञात किया था । इस प्रकार अधिनियम की धारा 25 की उपयोज्यता के लिए अत्यावश्यक संघटकों को सिद्ध नहीं किया गया है ।"

9. तथापि, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध अधिनियम की धारा 35 के अधीन एक उपधारणा की है । इस उपबंध को नीचे उद्धृत किया जाता है –

> "**35. आपराधिक मानसिक दशा की उपधारणा** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे अपराध के किसी अभियोजन

में, जिसमें अभियुक्त की मानसिक दशा अपेक्षित है, न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि अभियुक्त की ऐसी मानसिक दशा है किंतु अभियुक्त के लिए यह तथ्य साबित करना एक प्रतिरक्षा होगी कि उस अभियोजन में अपराध के रूप में आरोपित कार्य के बारे में उसकी कोई वैसी मानसिक दशा नहीं थी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में 'आपराधिक मानसिक दशा' के अंतर्गत आशय, हेतु, किसी तथ्य का ज्ञान और किसी तथ्य में विश्वास या उस पर विश्वास करने का कारण है ।

(2) इस धारा के प्रयोजन के लिए कोई तथ्य केवल तभी साबित किया गया कहा जाता है जब न्यायालय युक्तियुक्त संदेह से परे यह विश्वास करे कि वह तथ्य विद्यमान है और केवल इस कारण नहीं कि उसकी विद्यमानता अधिसंभाव्यता की प्रबलता के कारण सिद्ध होती है ।"

10. अधिनियम की धारा 54 के निबंधनों के अनुसार कब्जे के प्रश्न पर और धारा 35 के अधीन की गई उपधारणा पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने नूर आगा **बनाम** पंजाब राज्य [(2008) 16 एस. सी. सी. 147] वाले मामले में धारा 35 की सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखते हुए यह मत व्यक्त किया था कि क्योंकि यह धारा अभियुक्त पर एक अत्यधिक विपर्यस्त भार अधिरोपित करती है इसलिए इस धारा और अन्य संबद्ध धाराओं की उपयोज्यता के लिए शर्त का निष्कर्ष तथ्यों के आधार पर निकाला जाना होगा और केवल इसके पश्चात् ही अभियोजन पक्ष का इन आधारभूत तथ्यों को सिद्ध करने के आरंभिक भार का निर्वहन होगा कि धारा 35 लागू होती है ।

11. ऊपर उद्धृत मामले को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए यह स्पष्ट है कि यह साबित करने का आरंभिक भार कि अपीलार्थी को यह ज्ञान था कि यान, जिसका वह स्वामी था, का उपयोग स्वापक पदार्थ का परिवहन करने के लिए किया जा रहा

था, अभी भी अभियोजन पक्ष पर है, जो 'जानते हुए' शब्द से स्पष्ट होता है और साक्ष्य से युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित होने के पश्चात् ही कि उसे इसका ज्ञान था, धारा 35 के अधीन उपधारणा उद्भूत होगी । धारा 35 में भी यह पूर्वकल्पित है कि अभियुक्त की आपराधिक मानसिक दशा को एक तथ्य के रूप में युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया जाना चाहिए और मात्र यह नहीं कि इस बात की विद्यमानता अधिसंभाव्यता की प्रबलता के कारण सिद्ध होती है । हमारी यह राय है कि अपीलार्थी की मानसिक दशा के संबंध में किसी साक्ष्य के अभाव में धारा 35 के अधीन कोई उपधारणा नहीं की जा सकती । अभियोजन पक्ष केवल जिस साक्ष्य का अवलंब लेने की ईप्सा कर रहा है वह राजस्थान का अपना आवासीय पता देने में अपीलार्थी के आचरण के बारे में है यद्यपि वह हरियाणा में फतेहाबाद का निवासी था और यह कि अपीलार्थी ने ट्रक सुपरदारी पर लिया था । उल्लंघनकारी ट्रक के पंजीकरण की बात ही उसे ड्राइवर और अन्य द्वारा इसका दुरुपयोग करने का ज्ञान होने से तनिक संदेह के बिना संबद्ध नहीं किया जा सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

9. प्रस्तुत मामले के, तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि तारीख 16 मई, 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68 उप निरीक्षक राम मेहर (अभि. सा. 8) द्वारा की गई शिकायत के आधार पर रजिस्ट्रीकृत की गई थी, जो उस समय गश्त ड्यूटी पर था जब ट्रक सं. पीएटी/2029 को उलटे हुए पाया गया था और चूर्ण (पाउडर) के थैले बिखरे पड़े थे । उसे निकटवर्ती स्थान के दो दुकानदारों अर्थात् राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा सूचित किया गया था कि घटना तारीख 15 मई, 2000 को 9.00 बजे अपराह्न में हुई थी । घटना के पश्चात् ड्राइवर और क्लीनर ट्रक की केबिन से बाहर आए और उक्त साक्षियों द्वारा पूछताछ करने पर उन्होंने अपने नाम जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह बताए थे । उन्होंने स्वयं को ट्रक का ड्राइवर और क्लीनर होने का दावा किया था । वे उक्त घटना को ट्रक के स्वामी को सूचित करने के लिए गए थे किंतु वापस नहीं

आए । यह संदेह करते हुए कि ट्रक विनिषिद्ध पदार्थ ले जा रहा था, ट्रक और विनिषिद्ध वस्तुओं, दोनों को कब्जे में लिया गया था ।

10. ग्यारह अभियोजन साक्षी प्रस्तुत किए गए थे । दो अभियोजन साक्षियों अर्थात् राम सरूप (अभि. सा. 6) और नरेश कुमार (अभि. सा. 10) को इस कारण से सुसंगत कहा जा सकता था कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उनके नाम उन साक्षियों के रूप में वर्णित थे जिन्होंने पुलिस दल को ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर के नाम बताए थे । उन्होंने उनकी मौजूदगी में कोई घटना घटित होने और पुलिस दल को कोई बात सूचित करने की बात से इनकार किया । दोनों को पक्षद्रोही घोषित किया गया था । उन्होंने ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर की शनाख्त तक नहीं की थी । अभि. सा. 7 सहायक उप निरीक्षक राम सरूप पुलिस थाना अग्रोहा में उप निरीक्षक राम मेहर (अभि. सा. 8) के साथ तैनात था, जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी । उसने अपने साक्ष्य में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित बातों को दोहराने के अतिरिक्त यह कहा कि तारीख 19 मई, 2000 को बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह, निवासी नई अनाज मंडी, बरवाला ने यह कहा था कि जोगिन्द्र सिंह पुत्र जंग सिंह और गुरमेल सिंह पुत्र नछत्तर सिंह, प्रश्नगत ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर, ने उसके समक्ष यह कहा था कि वे हरभजन सिंह के कहने पर राजस्थान से चूरापोस्त के साथ-साथ पाउडर के 21 थैले लाए थे और उनका ट्रक अग्रोहा में उलट गया है । चूंकि पुलिस दल उनकी तलाश कर रहा है, इसलिए उन्होंने कहा कि उन्हें पुलिस के समक्ष पेश कर दिया जाए । वास्तविकता यह है कि बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह को साक्ष्य में पेश नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा यह मामला स्थापित करने की ईप्सा की गई थी कि ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर ने बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह के समक्ष न्यायिकेत्तर संस्वीकृति की थी । राम मेहर जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी, अभि. सा. 8 के रूप में उपसंजात हुआ था । उसके कथन में भी अपीलार्थी के विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया था । उसने भी अन्वेषण के दौरान अभिलिखित बलवान सिंह पुत्र चतर सिंह, जिसे साक्ष्य में पेश नहीं किया गया था, के कथन को निर्दिष्ट किया ।

11. अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में सभी सुझावों से इनकार किया था । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए संपूर्ण साक्ष्य में इन आधारभूत तथ्यों को साबित करने के लिए कि अपराध अपीलार्थी के ज्ञान और सहमति से कारित किया गया था, आरंभिक भार का निर्वहन करने के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई थी । यह ऐसा मामला है जिसमें वह यान के साथ नहीं था और न ही उसे तब घटनास्थल से गिरफ्तार किया गया था जब घटना घटी थी या जब ट्रक और विनिषिद्ध पदार्थ को अभिरक्षा में लिया गया था । उसे मात्र इस आधार पर दोषसिद्ध किया गया था कि वह ट्रक का पंजीकृत स्वामी है । विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा का संपूर्ण भार यान का पंजीकरण स्वामी होने के नाते अपीलार्थी पर डाला था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यान का ड्राइवर और क्लीनर निर्धन होने के कारण स्वामी की मौनानुकूलता के बिना इतनी बड़ी मात्रा में विनिषिद्ध पदार्थ की तस्करी करने का जोखिम नहीं लेंगे और अपीलार्थी को भी अपना आधार स्पष्ट करना चाहिए था । विचारण न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था ।

12. प्रस्तुत मामले में, निचले न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए कारित की गई प्राथमिक गलती यह है कि अभियोजन पक्ष द्वारा आधारभूत तथ्यों को सिद्ध किए बिना अपनी निर्दोषिता को साबित करने का भार उस पर स्थानांतरित करना चाहा गया है । इसलिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि को विधिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है ।

13. ऊपर वर्णित कारणों से यह अपील मंजूर की जाती है । निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों को अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी के जमानत बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 2 उम. नि. प. 224

दिनेश कुमार

बनाम

हरियाणा राज्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 530]

4 मई, 2023

न्यायमूर्ति सुधांशु धूलिया और न्यायमूर्ति संजय कुमार

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 364, 392, 394, 201 और 34 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 और 106] – हत्या और व्यपहरण – परिस्थितिजन्य साक्ष्य – मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने और अपीलार्थी-अभियुक्त के बताने पर मृतक के सामान की बरामदगी होने का साक्ष्य – दोषसिद्धि – अभियुक्तों द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपीलें फाइल किया जाना – अपीलों के लंबित रहने के दौरान एक अभियुक्त की मृत्यु हो जाने के कारण उसकी अपील का उपशमन हो जाना और अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना – संधार्यता – जहां मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने और उसकी मृत्यु होने के अनुमानित समय के बीच एक लंबा अंतराल हो और कोई निकटवर्ती सामीप्य न हो, वहां अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य कमजोर हो जाता है और स्वयमेव उसके आधार पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं होगा और जहां सह-अभियुक्त द्वारा जिस तथ्य का पहले ही पुलिस के समक्ष प्रकटीकरण कर दिया गया हो, ऐसे तथ्य को बाद में अन्य अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रकटीकरण के आधार पर सुसंगत तथ्य का पता चलना नहीं कहा जा सकता है और बरामदगी से संबंधित ऐसे तथ्य को भी अभियुक्त की दोषिता तय करने के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा परिस्थितियों की श्रृंखला को पूर्ण नहीं करने के कारण अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता और उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

इस मामले के, तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक गुरमेल सिंह हरियाणा के यमुना नगर जिले के गांव धीमो का रहने वाला था । तारीख 8 मई, 2000 की सुबह वह अपने ट्रैक्टर पर अपने गांव के निकटवर्ती गांव 'दादूपुर' (जो 15-20 किलो मीटर की दूरी पर है) के लिए रवाना हुआ था । दादूपुर में उसे अपनी बहिन और जीजा से मिलना था । वह तारीख 8 मई, 2000 को 2.00 बजे अपराह्न से 5.30 अपराह्न के बीच अपनी बहिन और जीजा के साथ था और उसके जीजा (अभि. सा. 1) के अनुसार वह उनके घर से तारीख 8 मई, 2000 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न में चला गया था । गुरमेल सिंह कभी अपने गांव नहीं लौटा । इसी बीच, मृतक का भाई हरबंस सिंह तारीख 11 मई, 2000 को अर्थात् तीन दिन के पश्चात् अपने भाई के ठौर-ठिकाने के बारे में अपनी बहिन से पूछताछ करने के लिए गांव दादूपुर गया तब उसे बताया गया कि मृतक तारीख 8 मई, 2000 को ही लगभग 5.30 बजे अपराह्न में उनके घर से चला गया था । इसके पश्चात् हरबंस सिंह ने पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहा कि जब वह अपने भाई की तलाश कर रहा था तो वह गांव दादूपुर पैट्रोल पम्प पर अपने पड़ोसी चरणजीत सिंह से मिला, जिसने उसे सूचित किया कि उसने गुरमेल सिंह को तारीख 8 मई, 2000 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में अपने ट्रैक्टर पर मांगे राम और दिनेश (दोनों अभियुक्त), जो निकटवर्ती गांवों के निवासी हैं, के साथ देखा था । वह इन दोनों व्यक्तियों के ठौर-ठिकाने के बारे में पता लगाने के लिए तत्परता से उन गांवों में गया तब उसे सूचित किया गया कि वे तारीख 8 मई, 2000 से लापता हैं । उसने फिर अपनी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहा कि मांगे राम और दिनेश ये दोनों व्यक्ति आवारा किस्म के हैं और उन्होंने उसके भाई के ट्रैक्टर को लूटने के लिए उसका व्यपहरण किया है । इसके बाद पुलिस द्वारा तारीख 11 मई, 2000 को भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया । अगले दिन अर्थात् तारीख 12 मई, 2000 को 1.30 बजे अपराह्न में एक नहर से मृतक के शव को बरामद किया गया । इसी बीच तारीख 12 मई, 2000 को सह-अभियुक्त मांगे राम को गिरफ्तार किया गया और उसके द्वारा पुलिस को दी गई जानकारी के आधार पर अगले दिन उसे उस स्थान पर ले जाया गया जहां उसने और दिनेश कुमार ने मृतक की हत्या की थी ।

इस स्थान से दो जोड़ी "चप्पलें" बरामद की गईं जिनमें से एक अपीलार्थी (दिनेश कुमार) की थी और दूसरी सह-अभियुक्त मांगे राम की । इस स्थान से मृतक के जले हुए बाल भी बरामद किए गए । इसके बाद मांगे राम पुलिस दल को उस नहर पर लेकर गया जहां से शव को गिराया गया था । तारीख 14 मई, 2000 को (अर्थात् अगले दिन) मांगे राम पुलिस दल को उस स्थान पर लेकर गया जहां उसके और दिनेश द्वारा मृतक के ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था । फिर भी, जब तक पुलिस दल उस स्थान पर पहुंचा तब तक स्थानीय पुलिस द्वारा पहले ही ट्रैक्टर का पता लगाया जा चुका था और रामपुर पुलिस थाना, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश में उनकी अभिरक्षा में था । अन्वेषण अधिकारी द्वारा स्थानीय पुलिस से ट्रैक्टर को कब्जे में लिया गया । वर्तमान अपीलार्थी को तारीख 14 मई, 2000 को गिरफ्तार किया गया । उसके प्रकटीकरण के आधार पर उसके निवास से एक कलाई घड़ी, 'परना' (पगड़ी) और 250/- रुपए के करंसी नोट बरामद किए गए जो अभिकथित रूप से मृतक से संबंधित थे । वह फिर पुलिस को उसी स्थान पर लेकर गया जहां सह-अभियुक्त मांगे राम उन्हें पहले दो स्थानों पर लेकर गया था अर्थात् वह स्थान जहां मृतक की हत्या की गई थी और वह स्थान जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302/364/392/394/201 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय में अलग-अलग अपील फाइल कीं । अपील के लंबित रहने के दौरान एक अभियुक्त की मृत्यु हो गई और उसके विरुद्ध अपील का उपशमन हो गया, तथापि, अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई । अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन का पक्षकथन दो परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है : (क) पुलिस अभिरक्षा में किया गया प्रकटीकरण और इसके आधार पर की गई बरामदगी और (ख) अभि. सा. 10 के रूप में अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य । परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले

में हेतु भी महत्वपूर्ण होता है । जहां तक हेतु का संबंध है, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि दोनों अभियुक्तों ने मृतक की हत्या केवल उसका ट्रैक्टर चुराने के लिए की थी । इस मामले में मृतक एक 42 वर्ष का अच्छी कद-काठी का आदमी था जिसकी ऊंचाई 6 फुट 2 इंच थी (तारीख 12.5.2000 की मरणोत्तर परीक्षा के अनुसार) । अभियोजन का पक्षकथन यह है कि मृतक का व्यपहरण किया गया था और दोनों अभियुक्तों द्वारा उसके ट्रैक्टर को लूटने के लिए उसकी हत्या कर दी गई थी और उन्होंने उसको मार कर उससे ट्रैक्टर लूट लिया था । अब अभियुक्तों ने किसी भी स्थिति में इस ट्रैक्टर को त्याग दिया था और तारीख 12 मई, 2000 को उनमें से एक के पकड़े जाने तक इसे बरामद करने के लिए कुछ नहीं किया था । संक्षेप में, 'हेतु' बहुत विश्वसनीय नहीं है । स्वीकृत स्थिति यह है कि मृतक का शव चार दिन पश्चात् अर्थात् तारीख 12 मई, 2000 को दोपहर में नहर से बरामद किया गया था और मरणोत्तर परीक्षा उसी दिन अर्थात् 12 मई, 2000 को लगभग 4.15 बजे अपराह्न में की गई थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा करने से 48 घंटे से अधिक समय पहले हुई थी, जिसका अर्थ है कि मृत्यु तारीख 10 मई, 2000 को सायं 4.00 बजे से पहले हुई थी । यद्यपि शव-परीक्षा रिपोर्टों में आमतौर पर मृत्यु का सटीक समय नहीं बताया जाता है अपितु केवल एक अनुमानित समय या अवधि का संकेत किया जाता है, फिर भी वर्तमान मामले में सामान्य परिस्थितियों में मृत्यु तारीख 10 मई, 2000 या 9 मई, 2000 को होनी चाहिए । तिस पर भी, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि मृतक की हत्या तारीख 8 मई, 2000 को ही की गई थी । यदि ऐसा है तो अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह स्पष्ट करे कि कैसे मृत्यु के चार दिनों के पश्चात् भी शरीर में काठिन्य बना रहा था । शव में 90 घंटे तक शव-काठिन्य रहने की संभावना को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा कभी भी इसे स्पष्ट नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह उन असामान्य परिस्थितियों को स्पष्ट करे जिनके अधीन मई के माह में 90 घंटे तक भी शरीर में शव-काठिन्य बना रहा था । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अभियोजन पक्ष इस मामले में महत्वपूर्ण कड़ियों को सिद्ध करने में असफल रहा है, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में बहुत

महत्वपूर्ण होती हैं । अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य किसी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाता है, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया हो और मृतक के शव का पता चलने या इस मामले में मृतक की मृत्यु होने के समय के बीच निकट का सामीप्य हो । इसका यह अर्थ नहीं है कि जिन मामलों में अंतिम बार देखे जाने और मृतक की मृत्यु होने के समय के बीच लंबा अंतराल है, वहां अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य अपना महत्व खो देगा । ऐसा नहीं होगा, किंतु फिर अभियोजन पक्ष पर यह साबित करने का अत्यधिक भार डाला जाता है कि वह साबित करे कि अंतिम बार देखे जाने और मृतक के शव का पता चलने या मृतक की मृत्यु होने के समय की इस अवधि के दौरान अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की मृतक तक पहुंच नहीं हो सकती थी । वर्तमान मामले में अंतिम बार देखे जाने की परिस्थितियां अपने आप में दोषिता का आधार नहीं बन सकती हैं । जहां तक बरामदगी का संबंध है, बरामदगी का आधार भी कमजोर है । तथाकथित अपराध का अभिकथित स्थान और ट्रैक्टर की बरामदगी या वह स्थान जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया था, का प्रकटीकरण सह-अभियुक्त द्वारा पहले ही वर्तमान अपीलार्थी की गिरफ्तारी होने के समय तक कर दिया था । इसलिए घटना के स्थान या उस स्थान के बारे में प्रकटीकरण करना जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था, कोई मायने नहीं रखता है । जहां तक अपीलार्थी के निवास से घड़ी, 250/- रुपए के करंसी नोट, बाल और 'परना' की बरामदगी का संबंध है, करंसी नोटों और बालों की शनाख्त मृतक के होने के रूप में नहीं की गई है । दांडिक विचारण में अभियोजन पक्ष को अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करना होता है । अभियोजन पक्ष द्वारा इस भारी भार का निर्वहन किया जाना चाहिए । परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में यह और भी कठिन हो जाता है । वर्तमान मामले में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य कमजोर प्रकृति का है । अभियुक्त पर दोषिता के आरोप को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य की श्रृंखला अवश्य पूर्ण होनी चाहिए और श्रृंखला से जो केवल और केवल एक निष्कर्ष इंगित होना चाहिए, वह यह है कि केवल अभियुक्त ने ही अपराध किया है किसी और ने नहीं । इस न्यायालय को खेद है कि अभियोजन पक्ष इस भार का निर्वहन नहीं कर सका है । हमारे सुविचारित मत में वर्तमान मामले

में अभियोजन पक्ष अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में समर्थ नहीं रहा है । अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य केवल एक बिंदु तक ले जाता है और इसके आगे नहीं । यह श्रृंखला में आगे कड़ी जोड़ने में असफल रहा है जिससे एक पूरी श्रृंखला बन सके । हमारे पास यहां जो कुछ है वह केवल अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य है जिसका महत्व, जैसा कि हमने देखा है, अंतिम बार देखे जाने और मृत्यु के संभावित समय के बीच लंबी समयावधि होने के कारण मामले की परिस्थितियों में काफी कम हो जाता है । जिसे हम यहां अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रकटीकरण कह सकते हैं, वह है 'मृतक' के 'परना' और घड़ी की बरामदगी । यह साक्ष्य स्वयमेव अपीलार्थी पर दोष तय करने के लिए पर्याप्त नहीं है । ऐसे मामले में जहां अपराध का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, वहां अभियोजन पक्ष को अपना पक्षकथन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर तैयार करना होता है । यह अभियोजन पक्ष पर बहुत भारी भार अधिरोपित करता है । अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित किए गए साक्ष्य से परिस्थितियों की इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए जिससे केवल एक निष्कर्ष इंगित हो और वह है कि अभियुक्त ही वह व्यक्ति है जिसने अपराध कारित किया था, किसी और ने नहीं । प्रत्येक साक्ष्य जिससे साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण होती हो, वह ठोस आधारों पर आधारित होना चाहिए । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अपेक्षित मानक पर खरा नहीं उतरता है । (पैरा 8, 12, 13 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 14 एस. सी. सी. 359 : **अंजन कुमार शर्मा और अन्य** बनाम **असम राज्य** ;	12, 14
[2016]	(2016) 1 एस. सी. सी. 550 : **निज़ाम और एक अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	12

[2011] (2011) 14 एस. सी. सी. 401 :
अजीत सिंह बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 12

[2007] (2007) 13 एस. सी. सी. 399 :
मल्लेशप्पा बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 12

[2007] (2007) 3 एस. सी. सी. 755 :
गोवा राज्य बनाम **संजय ठकरान** ; 12

[1982] [1982] 1 उम. नि. प. 558 =
ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1036 :
राम चंद्र बनाम **हरियाणा राज्य** ; 11

[1972] आई. एल. आर. 1972 आंध्र प्रदेश 683 =
1972 क्रि. ला जर्नल 1485 :
नेल्लोर बनाम **इंथा रमना रेड्डी** ; 11

[1957] (1957) 2 ऑल ई. आर. 155 =
(1957) 2 डब्ल्यू. एल. आर. 760 :
जोंस बनाम **नेशनल कोल बोर्ड** । 11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 530.

2003 की दांडिक अपील सं. 650 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 31 मई, 2017 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. सिराजुद्दीन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, नरेश कुमार, कीर्तिक वासन, राजसेकर और जेवियर फेलिक्स

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री दिनेश चंद्र यादव, अपर महाधिवक्ता, ए. एस. ऋषि, ईश्वर चंद, एम. के. बंसल और डा. मोनिका गुसैन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु धूलिया ने दिया ।

न्या. धूलिया – अपीलार्थी और एक मांगे राम को 2000 के सेशन

विचारण सं. 47 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, जगाधरी, हरियाणा द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302/364/392/394/201 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था । उन्हें तारीख 11 अप्रैल, 2003 के आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास का दंडादेश और शेष दोषसिद्धियों के लिए कमतर दंडादेश दिया गया था । इसके पश्चात् दोनों ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अलग-अलग अपीलें फाइल कीं । सह-अभियुक्त मांगे राम की उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान तारीख 24 अक्तूबर, 2004 को मृत्यु हो गई और तारीख 11 मई, 2017 के आदेश द्वारा उसकी अपील का उपशमन किया गया । वर्तमान अपीलार्थी की अपील को खारिज कर दिया गया और उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 31 मई, 2017 के अपने आदेश द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा गया । इस न्यायालय के समक्ष उसकी विशेष इजाजत याचिका पर तारीख 28 मार्च, 2022 को इजाजत दी गई थी ।

हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री ए. सिराजुद्दीन और हरियाणा राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री दिनेश चंद्र यादव को विस्तारपूर्वक सुना ।

2. अभियोजन का पक्षकथन पूर्ण रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य अंतिम बार देखे जाने के 'साक्ष्य' और अपीलार्थी द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर की गई 'बरामदगियों' पर आधारित है । इस मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं ।

3. मृतक गुरमेल सिंह हरियाणा के यमुना नगर जिले के गांव धीमो का रहने वाला था । तारीख 8 मई, 2000 की सुबह वह अपने ट्रैक्टर पर अपने गांव के निकटवर्ती गांव 'दादूपुर' (जो 15-20 किलोमीटर की दूरी पर है) के लिए रवाना हुआ था । दादूपुर में उसे अपनी बहिन और जीजा से मिलना था । वह तारीख 8 मई, 2000 को 2.00 बजे अपराह्न से 5.30 बजे अपराह्न के बीच अपनी बहिन और जीजा के साथ था और उसके जीजा (अभि. सा. 1) के अनुसार वह उनके घर से तारीख 8 मई, 2000 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न में चला गया था । गुरमेल सिंह

कभी अपने गांव नहीं लौटा । इसी बीच, मृतक का भाई हरबंस सिंह (दोनों भाई गांव धीमो में अपने परिवारों के साथ रह रहे थे) तारीख 11 मई, 2000 को अर्थात् तीन दिन के पश्चात् अपने भाई के ठौर-ठिकाने के बारे में अपनी बहिन से पूछताछ करने के लिए गांव दादूपुर गया तब उसे बताया गया कि मृतक तारीख 8 मई, 2000 को ही लगभग 5.30 बजे अपराह्न में उनके घर से चला गया था ।

इसके पश्चात् हरबंस सिंह ने तारीख 11 मई, 2000 को 4.00 बजे अपराह्न में पुलिस थाना बुरिया, जिला यमुना नगर (हरियाणा) में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह कहा कि गुरमेल सिंह उसका भाई है और दोनों संयुक्त परिवार के रूप में एक-साथ गांव धीमो में रहते हैं । फिर उसने बताया कि कैसे उसका भाई तारीख 8 मई, 2000 को सुबह अपने ट्रैक्टर पर उनकी बहिन से मिलने के लिए अपने गांव से गया था किंतु तब से वापस नहीं आया । उसने कहा कि जब वह अपने भाई की तलाश कर रहा था तो वह गांव दादूपुर पेट्रोल पम्प पर अपने पड़ोसी चरणजीत सिंह से मिला, जिसने उसे सूचित किया कि उसने गुरमेल सिंह को तारीख 8 मई, 2000 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में अपने ट्रैक्टर पर मांगे राम और दिनेश (दोनों अभियुक्त), जो निकटवर्ती गांवों के निवासी हैं, के साथ देखा था । वह इन दोनों व्यक्तियों के ठौर-ठिकाने के बारे में पता लगाने के लिए तत्परता से उन गांवों में गया तब उसे सूचित किया गया कि वे तारीख 8 मई, 2000 से लापता हैं । उसने फिर अपनी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहा कि मांगे राम और दिनेश ये दोनों व्यक्ति आवारा किस्म के हैं और उन्होंने उसके भाई के ट्रैक्टर को लूटने के लिए उसका व्यपहरण किया है । इसके बाद पुलिस द्वारा तारीख 11 मई, 2000 को भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया ।

अगले दिन अर्थात् तारीख 12 मई, 2000 को 1.30 बजे अपराह्न में एक नहर से मृतक के शव को बरामद किया गया । उसी दिन मृत्यु-समीक्षा की गई और शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया । डा. सुमेश गर्ग (अभि. सा. 4) और डा. अशोक कुमार शर्मा द्वारा सिविल अस्पताल, जगाधरी में तारीख 12 मई, 2000 को लगभग 4.15 बजे

अपराह्न में मरणोत्तर परीक्षा की गई । शव कई जगहों से त्वचा उखड़ने के साथ-साथ सूजा हुआ पाया गया था । मृतक के सभी चारों अंगों में शव-काठिन्य पाया गया था किंतु गरदन में मौजूद नहीं था । मृतक की जीभ और होठ गहरे लाल रंग के थे और सूजे हुए थे तथा मुंह और नथूनों से लाल रंग का झाग भी निकल रहा था । टेंटुआ और कंठिका उपास्थि पर गरदन के चारों ओर 53 सें. मी. × 8 सें. मी. का बांधने का चिह्न था । बांधने के चिह्न का आधार कठोर था और बांधने के चिह्न के किनारे पीले और चर्मपत्र जैसे थे । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि शव पर मौजूद बांधने के चिह्नों से मृत्यु-पूर्व गला घोंटा जाना प्रकट होता है । हृदयावरण को संकुलित पाया गया था और हृदय का बायां कक्ष खाली था तथा हृदय के दाएं कक्ष में थोड़ा रक्त पाया गया था । अंततः, मृत्यु का कारण गला घोंटने के कारण श्वास अवरुद्ध हो जाना था जो प्रकृति में मृत्यु-पूर्व का था ।

शव की मरणोत्तर परीक्षा से दर्शित होता है कि शव के सभी चारों अंगों में शव-काठिन्य मौजूद था किंतु गरदन में नहीं था । यह इस तथ्य का सूचक था कि शव से शव-काठिन्य पीछे हट रहा था । आम तौर पर, शव-काठिन्य मृत्यु के एक से दो घंटे के भीतर शुरू हो जाता है और लगभग 12 घंटे में सिर से पैर तक विकसित हो जाता है । शव-काठिन्य फिर उसी क्रम में गायब हो जाता है अर्थात् पहले सिर से फिर गरदन और फिर शरीर के निचले हिस्से तक । उत्तर भारत में सर्दियों में शव-काठिन्य लगभग 24 से 48 घंटे और गर्मियों में 18 से 21 घंटे तक रहता है । वैसे भी, यह कई परिवर्तनयुक्त होता है । शरीर की संरचना और मृतक का स्वास्थ्य, यह तथ्य कि इसे ठंडे पानी में रखा गया था और गर्मी से दूर रखा गया था, सभी कठोरता की प्रक्रिया को धीमा कर देंगे । (मोदी द्वारा चिकित्सा न्यायशास्त्र और विषविज्ञान की पाठ्यपुस्तक, अध्याय 15, पृ. 342) ।

शव-काठिन्य ठंडे पानी में डूबे शरीर में देर से गायब होता है । (उक्त पाठ्यपुस्तक, अध्याय 15, पृ. 342) । प्रस्तुत मामले में, मृतक का शव एक नहर से बरामद किया गया था और इसलिए इस संभावना से पूरी तरह से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शव-काठिन्य अभी

भी शरीर में रहेगा किंतु यह बात कहीं भी स्पष्ट नहीं की गई है । यद्यपि मृतक की मृत्यु का सही समय सामने नहीं आया है किंतु अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अभियुक्तों (दिनेश कुमार और मांगे राम) द्वारा तारीख 8 मई, 2000 को ही उसकी हत्या कर दी गई थी । यदि ऐसा है तो शव-काठिन्य शरीर में लगभग 90 घंटे तक बना रहा था, जो असामान्य है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने इस बात को स्पष्ट नहीं किया है और प्रतिरक्षा पक्ष ने निश्चित रूप से डा. सुमेश गर्ग (अभि. सा. 4) से इस पहलू पर प्रश्न नहीं किया है किंतु इस पहलू के महत्व को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न अभियोजन पक्ष से और विशिष्ट रूप से डाक्टर से पूछा जाना चाहिए था, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी । यदि प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा यह प्रश्न नहीं पूछा गया था तब यह प्रश्न भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 165 के अधीन न्यायालय में निहित शक्तियों के अधीन न्यायालय द्वारा साक्षी से पूछा जाना चाहिए था । किंतु हम थोड़ी देर में इस पर आएंगे ।

4. इसी बीच तारीख 12 मई, 2000 को सह-अभियुक्त मांगे राम को गिरफ्तार किया गया और उसके द्वारा पुलिस को दी गई जानकारी के आधार पर अगले दिन अर्थात् तारीख 13 मई, 2000 को उसे उस स्थान पर ले जाया गया जहां उसने और दिनेश कुमार ने मृतक की हत्या की थी । इस स्थान से दो जोड़ी "चप्पलें" बरामद की गईं जिनमें से एक अपीलार्थी (दिनेश कुमार) की थी और दूसरी सह-अभियुक्त मांगे राम की । इस स्थान से मृतक के जले हुए बाल भी बरामद किए गए थे । इसके बाद मांगे राम पुलिस दल को उस नहर पर लेकर गया जहां से शव को गिराया गया था ।

5. तारीख 14 मई, 2000 को (अर्थात् अगले दिन) मांगे राम पुलिस दल को उस स्थान पर लेकर गया जहां उसके और दिनेश द्वारा मृतक के ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था । फिर भी, जब तक पुलिस दल उस स्थान पर पहुंचा तब तक स्थानीय पुलिस द्वारा पहले ही ट्रैक्टर का पता लगाया जा चुका था और रामपुर पुलिस थाना, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश में उनकी अभिरक्षा में था । अन्वेषण अधिकारी द्वारा स्थानीय पुलिस से ट्रैक्टर को कब्जे में लिया गया ।

6. वर्तमान अपीलार्थी को तारीख 14 मई, 2000 को 'नंदगढ़' गांव से गिरफ्तार किया गया । उसके प्रकटीकरण के आधार पर उसके निवास से एक कलाई घड़ी, 'परना' (पगड़ी) और 250/- रुपए के करंसी नोट बरामद किए गए जो अभिकथित रूप से मृतक से संबंधित थे । वह फिर पुलिस को उसी स्थान पर लेकर गया जहां सह-अभियुक्त मांगे राम उन्हें पहले दो स्थानों पर लेकर गया था अर्थात् वह स्थान जहां मृतक की हत्या की गई थी और वह स्थान जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था । (इसी बीच तारीख 11.5.2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में धारा 34 के साथ पठित धारा 392/394/302 जोड़ी गई) ।

7. अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य करनजीत सिंह (अभि. सा. 10) का है जो शिकायतकर्ता (अभि. सा. 11) का पड़ोसी है । अभि. सा. 10 ने मृतक को तारीख 8 मई, 2000 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में दोनों अभियुक्तों अर्थात् दिनेश कुमार और मांगे राम के साथ देखा था । इस साक्षी के अनुसार मृतक ट्रैक्टर चला रहा था और दोनों अर्थात् अपीलार्थी और मांगे राम ट्रैक्टर के मडगार्ड पर बैठे थे ।

8. जैसा कि हम देख सकते हैं कि अभियोजन का पक्षकथन दो परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है – (क) पुलिस अभिरक्षा में किया गया प्रकटीकरण और इसके आधार पर की गई बरामदगी, और (ख) अभि. सा. 10 के रूप में अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य । परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में हेतु भी महत्वपूर्ण होता है । जहां तक हेतु का संबंध है, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि दोनों अभियुक्तों ने मृतक की हत्या केवल उसका ट्रैक्टर चुराने के लिए की थी । इस मामले में मृतक एक 42 वर्ष का अच्छी कद-काठी का आदमी था जिसकी ऊंचाई 6 फुट 2 इंच थी (तारीख 12.5.2000 की मरणोत्तर परीक्षा) । अभियोजन का पक्षकथन यह है कि मृतक का व्यपहरण किया गया था और दोनों अभियुक्तों द्वारा उसके ट्रैक्टर को लूटने के लिए उसकी हत्या कर दी गई थी और उन्होंने उसको मार कर उससे ट्रैक्टर लूट लिया था । अब अभियुक्तों ने किसी भी स्थिति में इस ट्रैक्टर को त्याग दिया था और तारीख 12 मई, 2000 को उनमें से एक के पकड़े जाने तक इसे बरामद करने के लिए कुछ नहीं किया था । संक्षेप में,

'हेतु' बहुत विश्वसनीय नहीं है ।

अपीलार्थी द्वारा पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए प्रकटीकरण किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप कतिपय तथ्यों का पता चला था, जैसे कि वह स्थान जहां चोरी का ट्रैक्टर छोड़ दिया गया था, वह स्थान जहां अभिकथित अपराध किया गया था और वह स्थान जहां शव को नहर में फेंका गया था, और 'परना', जले हुए बाल, कलाई की घड़ी और 250/- रुपए के करंसी नोट ।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 निम्नलिखित है :–

> "अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी – परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले तथ्य से स्पष्टत: संबंधित है, साबित की जा सकेगी ।"

उपरोक्त उपबंध से दर्शित होता है कि पता चला तथ्य एक सुभिन्न तथ्य होना चाहिए, ऐसा तथ्य जिसका पुलिस अभिरक्षा में किए गए प्रकटीकरण से पता चला है । तिस पर भी, सह-अभियुक्त मांगे राम द्वारा कराई गई पूर्ववर्ती खोज से ये तथ्य पहले से ही पुलिस की जानकारी में थे । सह-अभियुक्त मांगे राम को तारीख 12 मई, 2000 को गिरफ्तार किया गया था और ये खोज तारीख 12, 13 और 14 मई को कराई गई थी । वर्तमान अपीलार्थी को तारीख 14 मई, 2000 को गिरफ्तार किया गया था और उसके द्वारा कराई गई अभिकथित खोज बाद के समय पर की गई थी । सह-अभियुक्त मांगे राम के बताने पर पता चले तथ्यों को वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता है । यदि अभियुक्त द्वारा पुलिस को उनकी अभिरक्षा में रहते हुए प्रकटन किया गया है और ऐसे प्रकटन से इस तथ्य का पता चलता है तो उस पता चले तथ्य को अधिनियम की धारा 27 के संदर्भ में अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । इस सबके

साथ, इस तरह पता चले तथ्य की विशिष्ट विशेषता यह होनी चाहिए कि इस तरह के प्रकटीकरण से एक "सुभिन्न तथ्य" का पता चलना चाहिए । चोरी किए गए ट्रैक्टर की बरामदगी, वह स्थान जहां हत्या की गई थी और वह स्थान जहां नहर में शव को फेंका गया था, ऐसे तथ्य थे जो पहले से ही पुलिस की जानकारी में थे, चूंकि अभियोजन का यह पक्षकथन है कि सह-अभियुक्त मांगे राम, जिसे पुलिस द्वारा वर्तमान अपीलार्थी की गिरफ्तारी से दो दिन पहले गिरफ्तार किया गया था, ने इससे पहले तारीख 12, 13 और 14 मई, 2000 को इन्हीं तथ्यों का पता चलवाया था । इसलिए उसके पश्चात् किए गए प्रकटीकरण और बरामदगी को वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता है । पहले से पता चले तथ्य की कोई "खोज" नहीं हो सकती । जो रह जाता है वह है करंसी नोटों, कलाई घड़ी, 'परना' और बाल की खोज । बालों की न्यायालयिक रिपोर्ट में केवल यह कहा गया है कि यह 'मानव' के हैं । करंसी नोटों की पहचान वास्तव में मृतक के साथ नहीं की जा सकती है । जो रह जाता है वह है घड़ी और 'परना', जिसकी शनाख्त मृतक के होने के रूप में की गई है ।

दूसरा, "अंतिम बार देखे जाने" का साक्ष्य है । यह अभि. सा. 10 करतार सिंह के रूप में है जो शिकायतकर्ता का पड़ोसी है और जिसने अपीलार्थी को सह-अभियुक्त मांगे राम सहित तारीख 8 मई, 2000 को सायं 4.15 बजे मृतक के साथ देखा था ।

9. स्वीकृत स्थिति यह है कि मृतक का शव चार दिन पश्चात् अर्थात् तारीख 12 मई, 2000 को दोपहर में नहर से बरामद किया गया था और मरणोत्तर परीक्षा उसी दिन अर्थात् 12 मई, 2000 को लगभग 4.15 बजे अपराह्न में की गई थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा करने से 48 घंटे से अधिक समय पहले हुई थी, जिसका अर्थ है कि मृत्यु तारीख 10 मई, 2000 को सायं 4.00 बजे से पहले हुई थी । यद्यपि शवपरीक्षा रिपोर्टों में आमतौर पर मृत्यु का सटीक समय नहीं बताया जाता है अपितु केवल एक अनुमानित समय या अवधि का संकेत किया जाता है, फिर भी वर्तमान मामले में सामान्य परिस्थितियों में मृत्यु तारीख 10 मई, 2000 या 9 मई, 2000

को होनी चाहिए । तिस पर भी, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि मृतक की हत्या तारीख 8 मई, 2000 को ही की गई थी । यदि ऐसा है तो अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह स्पष्ट करे कि कैसे मृत्यु के चार दिनों के पश्चात् भी शरीर में काठिन्य बना रहा था । शव में 90 घंटे तक शव-काठिन्य रहने की संभावना को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा कभी भी इसे स्पष्ट नहीं किया गया था । अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह उन असामान्य परिस्थितियों को स्पष्ट करे जिनके अधीन मई के माह में 90 घंटे तक भी शरीर में शव-काठिन्य बना रहा था ।

उच्च न्यायालय ने केवल अभि. सा. 4 डा. सुमेश गर्ग, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, के साक्ष्य का अवलंब लिया है जिसने अपनी यह राय दी थी कि मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा के समय से 48 घंटे से अधिक समय पहले हुई थी और इसलिए मृतक को मांगे राम और वर्तमान अपीलार्थी द्वारा तारीख 8 मई, 2000 को मार दिया गया था । उच्च न्यायालय द्वारा जो कहा गया है वह यह है :–

> "अभि. सा. 4 डा. सुमेश गर्ग, जिसने डा. अशोक कुमार शर्मा के साथ मिलकर तारीख 12 मई, 2000 को गुरमेल सिंह के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, के अनुसार क्षतियां पहुंचने और मृत्यु होने के बीच की अधिसंभाव्य अवधि मिनटों में थी और मृत्यु होने तथा मरणोत्तर परीक्षा करने के बीच की अवधि 48 घंटे से अधिक थी । इस प्रकार, यह पता चलता है कि गुरमेल सिंह की हत्या अभियुक्त मांगे राम और दिनेश कुमार द्वारा तारीख 8 मई, 2000 को की गई थी ।"

10. विचारण न्यायालय इस पहलू के प्रति सचेत तो था किंतु फिर भी उसने इस पहलू पर इस कारण ध्यान नहीं दिया था कि प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा इस पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया था, विचारण न्यायालय द्वारा यह कहा गया था :–

> "मैंने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट का अनुशीलन किया है । इसके परिशीलन से यह प्रकट होता है कि सभी चारों अंगों में शव-

काठिन्य सूजन के कारण मौजूद था न कि सामान्य रूप से । प्रतिरक्षा पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह शव की मरणोत्तर परीक्षा करने वाले डाक्टर से पूछे कि क्या शव-काठिन्य की मौजूदगी इस तथ्य का संकेत है कि मृतक की हत्या उसके शव की मरणोत्तर परीक्षा करने के छत्तीस घंटे के भीतर कर दी गई थी । किंतु डाक्टर से ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया । डाक्टर ने अपने कथन में यह कहा था कि मृत्यु होने और मरणोत्तर परीक्षा करने के बीच का समय 48 घंटे से अधिक था और डाक्टर के इस कथन को उसकी प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई थी । इसलिए प्रतिरक्षा पक्ष के विद्वान् काउंसेल की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती ।"

11. हमें खेद है कि प्रतिरक्षा पक्ष की प्रतिपरीक्षा में कमजोरी को इंगित करके पीठासीन न्यायाधीश ने अप्रत्यक्ष रूप से विचारण में ही कमजोरी होने की बात स्वीकार की थी । हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि अधिनियम की धारा 165 के अधीन विचारण न्यायाधीश के पास किसी भी रूप में, किसी भी समय, किसी भी साक्षी से, या पक्षकारों से किसी भी सुसंगत या असंगत तथ्य के बारे में कोई भी प्रश्न पूछने की जबरदस्त शक्ति है । वास्तव में, यदि यह महसूस किया जाता है कि किसी साक्षी से कुछ महत्वपूर्ण और निर्णायक प्रश्न पूछे जाने शेष हैं तो ऐसा करना विचारण न्यायाधीश का कर्तव्य है । विचारण का प्रयोजन मामले की सच्चाई तक पहुंचना है । अधिनियम की धारा 165 निम्नलिखित है :–

"165. **प्रश्न करने या पेश करने का आदेश देने की न्यायाधीश की शक्ति** – न्यायाधीश सुसंगत तथ्यों का पता लगाने के लिए या उनका उचित सबूत अभिप्राप्त करने के लिए, किसी भी रूप में किसी भी समय किसी भी साक्षी या पक्षकारों से किसी भी सुसंगत या असंगत तथ्य के बारे में कोई भी प्रश्न, जो वह चाहे, पूछ सकेगा, तथा किसी भी दस्तावेज या चीज को पेश करने का आदेश दे सकेगा और न तो पक्षकार और न उनके अभिकर्ता हकदार होंगे कि वे किसी भी ऐसे प्रश्न या आदेश के प्रति कोई भी आक्षेप करें, न ऐसे किसी भी प्रश्न के प्रत्युत्तर में दिए गए किसी भी उत्तर का

किसी भी साक्षी की न्यायालय की इजाजत के बिना प्रतिपरीक्षा करने के हकदार होंगे :

परंतु निर्णय को उन तथ्यों पर, जो इस अधिनियम द्वारा सुसंगत घोषित किए गए हैं और जो सम्यक् रूप से साबित किए गए हों, आधारित होना होगा :

परंतु यह भी कि न तो यह धारा न्यायाधीश को किसी साक्षी को किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने के लिए या किसी ऐसे दस्तावेज को पेश करने को विवश करने के लिए प्राधिकृत करेगी, जिसका उत्तर देने से या जिसे पेश करने से यदि प्रतिपक्षी द्वारा वह प्रश्न पूछा गया होता या वह दस्तावेज मंगवाया गया होता, तो ऐसा साक्षी दोनों धाराओं को सम्मिलित करते हुए धारा 121 से धारा 131 पर्यंत धाराओं के अधीन इनकार करने का हकदार होता ; और न न्यायाधीश कोई ऐसा प्रश्न पूछेगा जिसका पूछना किसी अन्य व्यक्ति के लिए धारा 148 या धारा 149 के अधीन अनुचित होता ; और न वह एतस्मिनपूर्व अपवादित दशाओं के सिवाय किसी भी दस्तावेज के प्राथमिक साक्ष्य का दिया जाना अभिमुक्त करेगा ।"

किसी दांडिक विचारण में पीठासीन न्यायाधीश की शक्तियों और मामले की सच्चाई तक पहुंचने के उसके कर्तव्य को न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी द्वारा लिखित इस न्यायालय के जिस मौलिक निर्णय में अधिकथित किया गया है, वह **राम चंद्र** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाला मामला है । न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी ने उक्त निर्णय में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के रूप में **नेल्लोर** बनाम **इंथा रमना रेड्डी**[2] वाले मामले में उनके द्वारा दिए गए अपने पूर्ववर्ती निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें यह कहा गया था :–

"प्रत्येक दांडिक विचारण खोज की एक समुद्री यात्रा है जिसमें सत्यता की तलाश की जाती है । पीठासीन न्यायाधीश का कर्तव्य प्रत्येक ऐसे स्रोत की खोज करना है जो सत्य को खोज निकालने के

---

[1] [1982] 1 उम. नि. प. 558 = ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1036.

[2] आई. एल. आर. 1972 आंध्र प्रदेश 683 = 1972 क्रि. ला जर्नल 1485.

लिए तथा न्याय के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए उसे उपलब्ध हो सके । उस प्रयोजनार्थ उसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 द्वारा साक्षियों से प्रश्न करने का अधिकार दिया गया है । निश्चित रूप से किसी न्यायाधीश को दिया गया अधिकार इतना विस्तृत है कि वह कोई भी प्रश्न जो वह चाहे, किसी भी रूप में किसी भी समय किसी साक्षी से अथवा पक्षकारों से किसी तथ्य के संबंध में जो सुसंगत हो अथवा असंगत, पूछ सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 172(2) न्यायालय को किसी मामले में पुलिस डायरियां भेजने के लिए समर्थ बनाती है तथा विचारण में सहायता के लिए उनका उपयोग करने योग्य बनाती है । सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट की कार्यवाहियों के अभिलेख का परिशीलन भी सेशन न्यायाधीश द्वारा विचारण में उसकी सहायता के लिए किया जा सकता है ।"

किसी दांडिक विचारण के पीठासीन न्यायाधीश का कर्तव्य एक दर्शक या रिकार्डिंग मशीन के रूप में कार्यवाहियों को देखना नहीं है बल्कि "सच्चाई को अभिनिश्चित करने के लिए सक्रिय रुचि लेकर बुद्धिमतापूर्ण साक्षियों से प्रश्न पूछकर" विचारण में भाग लेना है । **जोंस** बनाम **नेशनल कोल बोर्ड**[1] वाले मामले में लार्ड डेनिंग के विनिश्चय का उल्लेख करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने यह कहा था कि जब किसी ऐसी बात को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाए जिसे नजरअंदाज कर दिया गया है या अस्पष्ट छोड़ दिया गया है, न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह साक्षियों से प्रश्न पूछे । इसके पश्चात् वे आगे यह कहते हैं :–

> "हम लार्ड डेनिंग से भी आगे जा सकते हैं और यह कह सकते हैं कि सत्य की खोज करना न्यायाधीश का कर्तव्य है और उस प्रयोजनार्थ वह 'कोई भी प्रश्न, किसी भी रूप में, किसी भी समय, किसी साक्षी या पक्षकारों से किसी तथ्य की बाबत, जो संगत हो या असंगत, पूछ सकता है' । (साक्ष्य अधिनियम की धारा 165) किंतु उसे यह लोक अभियोजक तथा प्रतिरक्षा काउंसेल के कृत्यों में असम्यक् हस्तक्षेप किए बिना और बिना किसी पक्षपात के तथा

[1] (1957) 2 ऑल ई. आर. 155 = (1957) 2 डब्ल्यू. एल. आर. 760.

> ऐसा प्रतीत हुए बिना कि साक्षियों को डराया गया है या आतंकित किया गया है, करना चाहिए । उसे अभियोजन पक्ष तथा प्रतिरक्षा पक्ष को अपने साथ रखना चाहिए । न्यायालय, अभियोजन तथा प्रतिरक्षा पक्ष को एक टीम के रूप में कार्य करना चाहिए जिसका उद्देश्य न्याय हो, एक ऐसी टीम जिसका कप्तान न्यायाधीश हो । न्यायाधीश को 'एक नर्तक दल के संचालक की तरह अपने व्यक्तित्व के बल से अपनी टीम से सामंजस्य के साथ कार्य करवाना चाहिए ; साहसी व्यक्तियों को दबाना चाहिए, कायरों को साहस दिलाना चाहिए, युवकों के साथ सांठगांठ करनी चाहिए तथा वृद्ध व्यक्तियों की चापलूसी करनी चाहिए ।'"

हमारी सुविचारित राय में, अभियोजन पक्ष इस मामले में महत्वपूर्ण कड़ियों को सिद्ध करने में असफल रहा है, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में बहुत महत्वपूर्ण होती हैं । शरीर में 90 घंटे के बाद शव-काठिन्य मौजूद रहना असामान्य है, हालांकि कतिपय परिस्थितियों में ऐसा संभव है । अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह इसे स्पष्ट करे । प्रतिरक्षा पक्ष भी इस पर प्रश्न उठाने में विफल रहा और न्यायालय चुप रहा । अब हम अंतिम बार देखे जाने के साक्ष्य पर आते हैं ।

12. अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य किसी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाता है, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया हो और मृतक के शव का पता चलने या इस मामले में मृतक की मृत्यु होने के समय के बीच निकट का सामीप्य हो । इसका यह अर्थ नहीं है कि जिन मामलों में अंतिम बार देखे जाने और मृतक की मृत्यु होने के समय के बीच लंबा अंतराल है, वहां अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य अपना महत्व खो देगा । ऐसा नहीं होगा, किंतु फिर अभियोजन पक्ष पर यह साबित करने का अत्यधिक भार डाला जाता है कि वह साबित करे कि अंतिम बार देखे जाने और मृतक के शव का पता चलने या मृतक की मृत्यु होने के समय की इस अवधि के दौरान अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की मृतक तक पहुंच नहीं हो सकती थी । वर्तमान मामले में अंतिम बार

देखे जाने की परिस्थितियां अपने आप में दोषिता का आधार नहीं बन सकती हैं (**अंजन कुमार शर्मा और अन्य** बनाम **असम राज्य**[1] वाले मामले का पैरा 19 देखें) ।

अंतिम बार एक साथ देखे जाने की परिस्थितियों से स्वयमेव अप्रतिरोध्य रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि अपराध अभियुक्त ने ही किया था । अभियोजन पक्ष को अभियुक्त और कारित अपराध के बीच इस संपर्क को स्थापित करने के लिए कुछ और अधिक करना चाहिए था । विशिष्ट रूप से, वर्तमान मामले में जब अंतिम बार एक साथ देखे जाने की परिस्थितियों और मृत्यु के अनुमानित समय के बीच कोई निकटवर्ती सामीप्य नहीं है, तो अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य कमजोर हो जाता है । (**मल्लेशप्पा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] वाले मामले का पैरा 23 देखें) ।

निज़ाम और एक अन्य बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाले मामले में, जहां अंतिम बार एक साथ देखे जाने और मृतक के शव का पता चलने के बीच समय का अंतराल लंबा था, यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस अवधि के दौरान कुछ अन्य हस्तक्षेप होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । जहां अंतिम बार देखे जाने और मृत्यु होने के समय के बीच का अंतराल पर्याप्त लंबा है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, वहां इस निष्कर्ष पर पहुंचना खतरनाक होगा कि अभियुक्त हत्या के लिए उत्तरदायी है । ऐसे मामलों में "अंतिम बार देखे जाने के सिद्धांत" के आधार पर दोषसिद्धि करना असुरक्षित है और अधिक सुरक्षित यह होगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई अन्य परिस्थितियों और साक्ष्यों से संपुष्टि की तलाश की जाए । यहां अन्य परिस्थितियां तथाकथित तथ्यों का पता चलने के बारे में हैं और इनमें से अधिकांश, जैसी कि हमने पहले ही चर्चा की है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की अपेक्षा को पूरा करने में विफल हैं ।

मरणोत्तर परीक्षा जो तारीख 12 मई, 2000 को 4.15 बजे

---

[1] (2017) 14 एस. सी. सी. 359.

[2] (2007) 13 एस. सी. सी. 399.

[3] (2016) 1 एस. सी. सी. 550.

अपराह्न में की गई थी, के अनुसार मृत्यु मरणोत्तर परीक्षा से 48 घंटे पहले हुई थी, जिसका अर्थ है कि मृत्यु तारीख 10 मई, 2000 को 4.00 बजे अपराह्न से पूर्व हुई थी । यह मान भी लिया जाए कि मृत्यु एक दिन पहले अर्थात् 9 मई, 2000 को हुई थी, फिर भी अंतिम बार देखे जाने के बीच एक लंबा अंतराल है जो तारीख 8 मई, 2000 को 7 बजे अपराह्न और तारीख 9 मई, 2000 की सुबह तक का है । **गोवा राज्य** बनाम **संजय ठकरान**[1] वाले मामले में, जहां अंतिम बार देखे जाने के साक्ष्य के अनुसार शव की बरामदगी "अंतिम बार देखे जाने" से केवल कुछ घंटे पहले हुई थी, इसे विश्वसनीय नहीं माना गया था ।

अजीत सिंह बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने पुन: इस बात पर जोर दिया था, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि अपराध के शिकार व्यक्ति को अंतिम बार जीवित देखे जाने और उसके (मृतक) शव का पता चलने के बीच निकटवर्ती सामीप्य होना चाहिए जिससे कि अपराध करने वाला कोई अन्य व्यक्ति होने की बात से इनकार किया जा सके । इस मामले में, यदि हम अंतिम बार देखे जाने और मरणोत्तर परीक्षा के अनुसार मृत्यु होने के अनुमानित समय के बीच का जो समय है उसको देखें, तो यह मरणोत्तर परीक्षा करने से पहले 48 घंटे से परे चला जाता है और मृत्यु होने के समय को खींचकर तारीख 9 मई, 2000 के सुबह तक ले जाया जा सकता है, फिर भी समय के इस अंतराल के बारे में अभियोजन पक्ष से इस बारे में स्पष्टीकरण देने की अपेक्षा थी क्योंकि मृतक को दोनों अभियुक्तों के साथ अंतिम बार तारीख 8 मई, 2000 को 7.00 बजे अपराह्न में देखा गया था ।

विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने मामले के इस महत्वपूर्ण पहलू की अनदेखी की है । दोनों न्यायालयों ने अधिनियम की धारा 106 का अवलंब लिया और अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अभियुक्त को अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया था और वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में मृतक के साथ अपनी मौजूदगी के बारे में कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देने में समर्थ

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 755.

[2] (2011) 14 एस. सी. सी. 401.

नहीं रहा, इसलिए इसे अभियुक्त के विरुद्ध पढ़ा जाना चाहिए और परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला में इसकी एक अतिरिक्त कड़ी के रूप में गणना की जानी चाहिए । वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों में यह सबसे महत्वपूर्ण पहलू प्रतीत होता है जिसने विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने में प्रभावित किया । तथापि, हमें खेद है कि यह अधिनियम की धारा 106 का पूरी तरह से गलत पठन है ।

अधिनियम की धारा 101 में सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर डाला गया है । यह धारा निम्नलिखित है :–

> "**101. सबूत का भार** – जो कोई न्यायालय से यह चाहता है कि वह ऐसे किसी विधिक अधिकार या दायित्व के बारे में निर्णय दे, जो उन तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर है, जिन्हें वह प्राख्यात करता है, उसे साबित करना होगा कि उन तथ्यों का अस्तित्व है ।
>
> जब कोई व्यक्ति किसी तथ्य का अस्तित्व साबित करने के लिए आबद्ध है, तब यह कहा जाता है कि उस व्यक्ति पर सबूत का भार है ।"

अधिनियम की धारा 106 धारा 101 का अपवाद सृजित करती है, जो निम्नलिखित है :–

> "**106. विशेषत: ज्ञात तथ्य को साबित करने का भार** – जबकि कोई तथ्य विशेषत: किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है ।"

अधिनियम की धारा 106 उस नियम का एक अपवाद है जो धारा 101 में है और यह केवल एक सीमित अर्थ में वहां लागू होता है जहां साक्ष्य ऐसी प्रकृति का है जो विशेषत: उस व्यक्ति की जानकारी में है और फिर उस तथ्य को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाता है ।

सबूत का भार सदैव अभियोजन पक्ष पर होता है । अभियोजन पक्ष को ही अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करना होता है । अधिनियम की धारा 106 इस स्थिति को नहीं बदलती है । यह

केवल कतिपय परिस्थितियों के सिद्ध हो जाने पर किसी तथ्य के प्रकटीकरण का भार डालती है । हमारे पास अभि. सा. 10 (करनजीत सिंह), अंतिम बार देखे जाने के साक्षी, के परिसाक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है । जब अपीलार्थी से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन तारीख 8 मई, 2000 को सह-अभियुक्त मांगे राम सहित मृतक के साथ होने के बारे में प्रश्न पूछा गया था, तो उसके द्वारा अपने कथन में अपने ठिकाने के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था । यही कारण है कि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त अधिनियम की धारा 106 के अधीन अपने भार का निर्वहन नहीं कर सका है और इसलिए इसे अपीलार्थी के विरुद्ध साक्ष्य की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । हमारे विचार से, तथापि, अधिनियम की धारा 106 भी यहां प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगी ।

13. ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिनियम की धारा 106 केवल तभी लागू होती है जब अभियोजन पक्ष द्वारा अन्य तथ्य सिद्ध कर दिए गए हों । इस मामले में जब अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य स्वयमेव एक कमजोर आधार पर है, इसलिए अभि. सा. 10 द्वारा अंतिम बार देखे जाने और मृतक की मृत्यु के समय के बीच लंबे अंतराल को देखते हुए अधिनियम की धारा 106 इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगी ।

14. जहां तक बरामदगी का संबंध है, बरामदगी का आधार भी कमजोर है । तथाकथित अपराध का अभिकथित स्थान और ट्रैक्टर की बरामदगी या वह स्थान जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया था, का प्रकटीकरण सह-अभियुक्त द्वारा पहले ही वर्तमान अपीलार्थी की गिरफ्तारी होने के समय तक कर दिया था । इसलिए घटना के स्थान या उस स्थान के बारे में प्रकटीकरण करना जहां ट्रैक्टर को छोड़ दिया गया था, कोई मायने नहीं रखता है । जहां तक अपीलार्थी के निवास से घड़ी, 250/- रुपए के करंसी नोट, बाल और 'परना' की बरामदगी का संबंध है, करंसी नोटों और बालों की शनाख्त मृतक के होने के रूप में नहीं की गई है । दांडिक विचारण में अभियोजन पक्ष को अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करना होता है । अभियोजन पक्ष द्वारा इस भारी

भार का निर्वहन किया जाना चाहिए । परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में यह और भी कठिन हो जाता है । वर्तमान मामले में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य कमजोर प्रकृति का है । अभियुक्त पर दोषिता के आरोप को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य की श्रृंखला अवश्य पूर्ण होनी चाहिए और श्रृंखला से जो केवल और केवल एक निष्कर्ष इंगित होना चाहिए, वह यह है कि केवल अभियुक्त ने ही अपराध किया है किसी और ने नहीं । हमें खेद है कि अभियोजन पक्ष इस भार का निर्वहन नहीं कर सका है ।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में न्यायालय द्वारा जिन कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, वे भी भली-भांति स्थिर हैं किंतु फिर भी ये कारक, जो **अंजन कुमार शर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले से उद्धृत किए जा रहे हैं, निम्नलिखित हैं :–

> "(1) वे परिस्थितियां जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, पूरी तरह सिद्ध की जानी चाहिएं । संबंधित परिस्थितियां 'सिद्ध करनी होंगी' या 'की जानी चाहिएं' न कि 'की जा सकती हैं' ;
>
> (2) इस प्रकार, सिद्ध किए गए तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की कल्पना के अनुरूप होने चाहिएं अर्थात् इस बात के सिवाय कि अभियुक्त दोषी है, किसी अन्य कल्पना के पोषक नहीं होने चाहिएं ;
>
> (3) परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं ;
>
> (4) उन्हें साबित की जाने वाली हर उप-कल्पना के सिवाय हर संभावित उप-कल्पना अपवर्जित करनी चाहिए ; और
>
> (5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए कोई भी युक्तियुक्त आधार न बचे और उससे यह दर्शित हो कि संपूर्ण मानवीय अधिसंभावना में वह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा ।"

15. हमारे सुविचारित मत में वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में समर्थ नहीं रहा है । अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य केवल एक बिंदु तक ले जाता

है और इसके आगे नहीं । यह श्रृंखला में आगे कड़ी जोड़ने में असफल रहा है जिससे एक पूरी श्रृंखला बन सके । हमारे पास यहां जो कुछ है वह केवल अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य है जिसका महत्व, जैसा कि हमने देखा है, अंतिम बार देखे जाने और मृत्यु के संभावित समय के बीच लंबी समयावधि होने के कारण मामले की परिस्थितियों में काफी कम हो जाता है । जिसे हम यहां अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रकटीकरण कह सकते हैं, वह है 'मृतक' के 'परना' और घड़ी की बरामदगी । यह साक्ष्य स्वयमेव अपीलार्थी पर दोष तय करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

ऐसे मामले में जहां अपराध का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, वहां अभियोजन पक्ष को अपना पक्षकथन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर तैयार करना होता है । यह अभियोजन पक्ष पर बहुत भारी भार अधिरोपित करता है । अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित किए गए साक्ष्य से परिस्थितियों की इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए जिससे केवल एक निष्कर्ष इंगित हो और वह है कि अभियुक्त ही वह व्यक्ति है जिसने अपराध कारित किया था, किसी और ने नहीं । प्रत्येक साक्ष्य जिससे साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण होती हो, वह ठोस आधारों पर आधारित होना चाहिए । हमारी सुविचारित राय में, इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अपेक्षित मानक पर खरा नहीं उतरता है ।

16. अत: यह अपील सफल होती है । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के क्रमश: तारीख 11 मार्च, 2007 और 31 मई, 2017 के आदेशों को तद्द्वारा अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी जेल में है, उसे जब तक कि उसकी किसी अन्य मामले में उपस्थिति आवश्यक न हो, तुरंत छोड़ दिया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 2 उम. नि. प. 249

भास्कर और एक अन्य

बनाम

अयोध्या ज्वैलर्स

[2023 की सिविल अपील सं. 3844]

10 मई, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 21, नियम 92, 94 और 95 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची की मद 134] – सार्वजनिक नीलामी में विक्रय की गई संपत्ति के कब्जे के परिदान के लिए आदेश 21 के नियम 95 के अधीन निष्पादन न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन को मंजूर किया जाना – प्रत्यर्थी का आवेदन परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की मद 134 में विहित अवधि के परे होने के आधार पर अपीलार्थियों द्वारा उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – पुनरीक्षण आवेदन को खारिज किया जाना – संधार्यता – आदेश 21 के नियम 94 में निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की आवश्यकता से यह दर्शित होता है कि विधानमंडल का यह दृष्टिकोण था कि निष्पादन न्यायालय द्वारा नीलामी की पुष्टि का आदेश पारित कर देना ही पर्याप्त नहीं हो सकेगा और न्यायालय द्वारा विक्रय का प्रमाणपत्र जारी किया जाना इस तथ्य का साक्ष्य होगा कि निष्पादन न्यायालय द्वारा नीलाम विक्रय की पुष्टि की गई है, इसलिए आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की मद 134 के बीच असंगति का निवारण करने का एकमात्र तरीका यह है कि मद 134 का पठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको न्यायालय द्वारा क्रेता के पक्ष में नीलाम विक्रय की पुष्टि करते हुए विक्रय प्रमाणपत्र वास्तव में जारी किया जाता है और उच्चतम न्यायालय

के इस विषय पर पूर्ववर्ती निर्णय पर बृहत्तर न्यायापीठ द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता को देखते हुए मामले को एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने के लिए निर्देशित करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थियों द्वारा धारित संपत्ति को उनके विरुद्ध पारित एक डिक्री के निष्पादन में सार्वजनिक नीलामी में विक्रय कर दिया गया था । यह संपत्ति प्रत्यर्थी द्वारा क्रय की गई थी । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अनुसार विक्रय की पुष्टि का आदेश तारीख 16 जुलाई, 2009 को पारित किया गया था । निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र तारीख 5 फरवरी, 2010 को जारी किया गया था । प्रत्यर्थी ने तारीख 27 जुलाई, 2010 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन संपति के कब्जे के परिदान के लिए आवेदन फाइल किया । निष्पादन न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन को मंजूर किया गया । अपीलार्थियों द्वारा केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके निष्पादन न्यायालय के आदेशों को इस आधार पर चुनौती दी गई कि परिसीमा अधिनियम मे ऐसा आवेदन फाइल करने का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय की पुष्टि का आदेश पारित किया जाता है न कि विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने की तारीख । उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख थी जिसको निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया गया था । अपीलार्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय को उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा इस असंगति के निवारण के लिए मामले का विनिश्चय एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा किए जाने के लिए मामले को निर्देशित करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के मद 134 में यह उपबंधित है कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने

के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको विक्रय की पुष्टि की जाती है । आदेश 21 के नियम 92 के अधीन निष्पादन न्यायालय के लिए अपेक्षित है कि वह विक्रय की पुष्टि का आदेश करते हुए एक आदेश पारित करे । उक्त आदेश पारित करने के उपरांत, विक्रय आत्यंतिक बन जाता है । आदेश 21 के नियम 94 में क्रेता को एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की अपेक्षा की गई है । तथापि, प्रमाणपत्र की तारीख वह तारीख होगी जिसको विक्रय आत्यंतिक हुआ था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 95 को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर इसमें दो शर्तें सम्मिलित हैं, जो निम्नलिखित हैं :–

i विक्रय की गई स्थावर संपत्ति निर्णीत-ऋणी के या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के या ऐसे हक के अधीन जिसे निर्णीत-ऋणी ने ऐसी संपत्ति की कुर्की हो जाने के पश्चात् सृष्ठ किया है, दावा करने वाले किसी व्यक्ति के अधिभोग में होनी चाहिए ; और

ii विक्रय के संबंध में प्रमाणपत्र सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अधीन दिया गया हो ।

दोनों शर्तें पूरी हो जाने पर ही निष्पादन न्यायालय क्रेता के आवेदन पर नीलाम संपत्ति पर क्रेता का कब्जा कराकर कब्जे के परिदान का आदेश पारित करने के लिए सशक्त है । इस प्रकार, एक ओर, आदेश 21, नियम 95 में यह आदिष्ट है कि नीलाम-क्रेता द्वारा नीलाम संपत्ति के कब्जे के लिए आवेदन केवल आदेश 21 के नियम 94 के अनुसार विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने के पश्चात् ही किया जा सकता है । किंतु दूसरी ओर, आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए आरंभिक बिंदु परिसीमा अधिनियम के मद 134 के अनुसार वह तारीख है जिसको आदेश 21, नियम 92 के अनुसार विक्रय को आत्यंतिक किया जाता है । निष्पादन न्यायालय के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 94 के अनुसार विक्रय प्रमाणपत्र जारी करना आबद्धकर है । व्यावहारिक रूप से, हम प्राय: विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने में पर्याप्त विलंब होना देखते हैं । इस मामले में, विलंब छह माह से अधिक का है । बहुत से मामलों में, विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने में प्रक्रियात्मक

विलंब होता है जिसके लिए नीलाम-क्रेता को दोष नहीं दिया जा सकता है । अत: हमारे प्रथमदृष्ट्या मत में, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की पुष्टि का आदेश नीलाम-क्रेता को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 का अवलंब लेते हुए कब्जे के लिए आवेदन करने हेतु वाद हेतुक नहीं देता है । वह ऐसा आवेदन तब तक नहीं कर सकता जब तक निष्पादन न्यायालय एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी नहीं कर देता है । यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता विक्रय प्रमाणपत्र जारी होने से पूर्व आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल किया जाना अनुज्ञात नहीं करती है, तो भी परिसीमा अधिनियम का मद 134 इस आधार पर अग्रसर होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की पुष्टि के आदेश के आधार पर कब्जे के लिए आवेदन करने हेतु नीलाम-क्रेता को वाद हेतुक उपलब्ध हो जाता है । अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम के मद 134 के उपबंधों के बीच स्पष्ट असंगति है । प्रश्न यह है कि क्या असंगति या विषमता को ठीक करने के लिए सोद्देश्य निर्वचन किया जा सकता है । हम यहां यह उल्लेख कर सकते हैं कि यदि प्रमाणपत्र जारी करने में विलंब निष्पादन न्यायालय द्वारा किया गया है, तो आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने में विलंब को माफ नहीं किया जा सकता क्योंकि आदेश 21 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के सुसंगत उपबंधों पर वापस आते हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) और 94 का संयुक्त रूप से पठन करने पर यह स्पष्ट है कि आदेश 21, नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की संपुष्टि के आदेश की परिणति आदेश 21 के नियम 94 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र प्रदान करके होती है । विक्रय प्रमाणपत्र में सम्मिलित की जाने वाली विक्रय की तारीख विक्रय की संपुष्टि का आदेश पारित करने की तारीख है । आदेश 21 के नियम 94 में एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की अपेक्षा को सम्मिलित किया गया है, इस वास्तविकता से ही

यह दर्शित होता है कि विधानमंडल का यह दृष्टिकोण था कि मात्र नीलामी की पुष्टि का आदेश पर्याप्त नहीं हो सकेगा । प्रमाणपत्र अंततोगत्वा इस तथ्य का साक्ष्य है कि जिस व्यक्ति को प्रमाणपत्र जारी किया जाता है, उसके पक्ष में नीलामी की निष्पादन न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है । प्रथमदृष्ट्या, हमें यह प्रतीत होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम के मद 134 के बीच असंगति से बचने का एकमात्र तरीका यह है कि मद 134 को इस प्रकार पढ़ा जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिस तारीख को नीलाम विक्रय की पुष्टि अभिलिखित करते हुए वास्तव में क्रेता को प्रमाणपत्र जारी किया जाता है । ऐसे निर्वचन से इनको यूरोप लिमिटेड और अन्य वाले मामले अधिकथित की गई तीनों कसौटियों का समाधान हो जाएगा । अत: हमारे सुविचारित मत में, पट्टम खादेर खान बनाम पट्टम सरदार खान वाले मामले में समन्वित न्यायपीठ के विनिश्चय और विशेष रूप से जो पैरा 11 में अभिनिर्धारित किया गया है, बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है । हमारे सुविचारित मत में, बृहत्तर न्यायपीठ को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए परिसीमा के आरंभिक बिंदु से संबंधित विवाद्यक का विनिश्चय करना होगा । हम रजिस्ट्रार (जे-I) को इस आदेश की प्रति के साथ इस अपील को भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत करने का निदेश देते हैं जिससे कि वे प्रशासनिक स्तर पर समुचित विनिश्चय करने के लिए समर्थ हो सकें । (पैरा 8, 13, 14, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 3 एस. सी. सी. 123 : **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** बनाम **एम. एस. एम. हनीफा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** ;	3, 4, 5, 11

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 24 :
एफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड और एक अन्य बनाम **चेरियन वर्की कंस्ट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** ; 15

[2000] (2000) 2 ऑल ई. आर. 109 :
इंको यूरोप लिमिटेड और अन्य बनाम **फर्स्ट च्वायस डिस्ट्रीब्यूशन (ए फर्म) और अन्य** ; 16, 19

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 48 :
पद्दम खादेर खान बनाम **पद्दम सरदार खान और एक अन्य** ; 4, 9, 11, 12, 19

[1991] (1991) 2 एस. सी. सी. 87 :
सुरजीत सिंह कालरा बनाम **भारत संघ और अन्य** । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2023 की सिविल अपील सं. 3844.

2016 की सीआरपी सं. 181 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम द्वारा तारीख 11 अप्रैल, 2017 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री श्रीजेश एम. के., (सुश्री) नेहा शर्मा और महेश अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अरुण के. सिन्हा, शरद अग्रवाल, रोहन गोयल और राकेश सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय एस. ओका ने दिया ।

न्या. ओका – इजाजत दी गई ।

तथ्यात्मक पहलू

2. इस अपील में विचार करने के लिए जो विवाद्यक उद्भूत होता है वह यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सिविल प्रक्रिया

संहिता') के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु क्या है ।

3. अपीलार्थियों द्वारा धारित इस अपील की विषयवस्तु की संपत्ति को अपीलार्थियों के विरुद्ध पारित एक डिक्री के निष्पादन में सार्वजनिक नीलामी में विक्रय कर दिया गया था । प्रत्यर्थी संपत्ति का क्रेता है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अनुसार विक्रय की संपुष्टि का आदेश तारीख 16 जुलाई, 2009 को पारित किया गया था । निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र तारीख 5 फरवरी, 2010 को जारी किया गया था । प्रत्यर्थी ने तारीख 27 जुलाई, 2010 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । निष्पादन न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन को मंजूर किया गया । अपीलार्थियों ने उक्त आदेश के पुनर्विलोकन के लिए आवेदन किया । निष्पादन न्यायालय द्वारा पुनर्विलोकन के लिए निवेदन को खारिज कर दिया गया । अपीलार्थियों ने केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके निष्पादन न्यायालय के आदेशों को चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने तारीख 11 अप्रैल, 2017 के निर्णय द्वारा, जिसे इस अपील में आक्षेपित किया गया है, पुनरीक्षण आवेदन को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख थी जिसको निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उच्च न्यायालय ने **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** बनाम **एम. एस. एम. हनीफा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया ।

पक्षकारों की दलीलें

4. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान परिसीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'परिसीमा

[1] (2017) 3 एस. सी. सी. 123.

अधिनियम') की अनुसूची की मद 134 की ओर दिलाया । उन्होंने यह बताया कि मद 134 सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन किए गए आवेदन को विनिर्दिष्ट रूप से लागू होती है । इसमें ऐसा आवेदन फाइल करने के लिए उस तारीख से जिसको विक्रय आत्यंतिक हो जाता है एक वर्ष का उपबंध किया गया है । उन्होंने दलील दी कि इस मामले में विक्रय की पुष्टि तारीख 16 जुलाई, 2009 को की गई थी और प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन एक वर्ष से अधिक समय के पश्चात् अर्थात् 27 जुलाई, 2010 को किया गया था । उन्होंने **पद्दम खादेर खान** बनाम **पद्दम सरदार खान और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया । उन्होंने दलील दी कि इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अनुसार नीलाम विक्रय को आत्यंतिक किया जाता है । उन्होंने दलील दी कि उच्च न्यायालय ने **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय का अवलंब लेकर गलती की थी । उक्त मामले में, विक्रय को अपास्त करने के लिए आवेदन को नामंजूर करते हुए आदेश के विरुद्ध एक पुनरीक्षण आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था जिसमें आगे की कार्यवाहियों को रोक दिया गया था । परिसीमा की संगणना करते हुए रोक की अवधि को अपवर्जित कर दिया गया था और यही कारण है कि इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त मामले में किया गया आवेदन परिसीमा के भीतर था ।

5. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल की आक्षेपित आदेश के समर्थन में दलील यह है कि प्रत्यर्थी द्वारा किया गया आवेदन परिसीमा अधिनियम के अवशिष्ट अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होगा, जिसमें परिसीमा की अवधि तीन वर्ष दी गई है । अत: उन्होंने दलील दी कि किसी भी दशा में **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उच्च

---

[1] (1996) 5 एस. सी. सी. 48.

न्यायालय द्वारा ठीक ही लागू किया गया है ।

हमारा दृष्टिकोण

6. हमने दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92, 94 और 95 को उद्धृत करना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं :–

> "**92. विक्रय कब आत्यंतिक हो जाएगा या अपास्त कर दिया जाएगा** – (1) जहां नियम 89, नियम 90 या नियम 91 के अधीन कोई भी आवेदन नहीं किया गया है या जहां ऐसा आवेदन किया गया है और अननुज्ञात कर दिया गया है वहां न्यायालय विक्रय को पुष्ट करने वाला आदेश करेगा और तब विक्रय आत्यंतिक हो जाएगा :
>
> परंतु जहां किसी संपत्ति का, ऐसी संपत्ति के किसी दावे का अंतिम निपटारा होने तक या उसकी कुर्की के लिए आक्षेप के लंबित रहने तक डिक्री के निष्पादन में विक्रय किया गया है, वहां न्यायालय ऐसे विक्रय को ऐसे दावे या आक्षेप के अंतिम निपटारे तक पुष्ट नहीं करेगा ।
>
> (2) जहां ऐसा आवेदन किया गया है और अनुज्ञात कर दिया गया है और जहां नियम 89 के अधीन आवेदन की दशा में वह निक्षेप जो उस नियम द्वारा अपेक्षित है, विक्रय की तारीख से साठ दिन के भीतर कर दिया गया है या उस दशा में जिसमें नियम 89 के अधीन निक्षिप्त रकम निक्षेपकर्ता की ओर से हुई किसी लिपिकीय या गणित संबंधी भूल के कारण कम पाई जाती है और ऐसी कमी कितने समय के भीतर पूरी कर दी जाती है जितना न्यायालय द्वारा नियत किया जाए, वहां न्यायालय विक्रय को अपास्त करने वाला आदेश करेगा :
>
> परंतु जब तक कि आवेदन की सूचना उसके द्वारा प्रभावित सभी व्यक्तियों को न दे दी गई हो, ऐसा कोई आदेश नहीं किया जाएगा । परंतु यह भी कि इस उप नियम के अधीन निक्षेप उन सभी मामलों में साठ दिन के भीतर किया जा सकेगा जिनमें तीस

दिन की अवधि, जिसके भीतर निक्षेप किया जाना था, सिविल प्रक्रिया (संशोधन) अधिनियम, 2002 के प्रारंभ से पूर्व समाप्त नहीं हुई है ।

(3) इस नियम के अधीन किए गए आदेश को अपास्त कराने के लिए कोई भी वाद ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा नहीं लाया जाएगा जिसके विरुद्ध ऐसा आदेश किया गया है ।

(4) जहां कोई अन्य पक्षकार नीलाम-क्रेता के विरुद्ध वाद फाइल करके निर्णीत-ऋणी के हक को चुनौती देता है वहां डिक्रीदार और निर्णीत-ऋणी वाद के आवश्यक पक्षकार होंगे ।

(5) यदि उप नियम (4) में निर्दिष्ट वाद की डिक्री दे दी जाती है तो न्यायालय डिक्रीदार को निर्देश देगा कि वह नीलाम-क्रेता को धन वापस कर दे और जहां ऐसा आदेश पारित किया जाता है वहां निष्पादन की कार्यवाहियां, जिनमें विक्रय किया गया था, उस दशा के सिवाय जिसमें न्यायालय अन्यथा आदेश देता है, उस प्रक्रम पर पुन: प्रवर्तित की जाएंगी जिस पर विक्रय का आदेश किया गया था ।"

.....

"94. क्रेता को प्रमाणपत्र – जहां स्थावर संपत्ति का विक्रय आत्यंतिक हो गया है वहां न्यायालय विक्रीत संपत्ति को और विक्रय के समय जिस व्यक्ति को क्रेता घोषित किया गया है उसके नाम को निर्दिष्ट करने वाला प्रमाणपत्र देगा । ऐसे प्रमाणपत्र में उस दिन की तारीख होगी जिस दिन विक्रय आत्यंतिक हुआ था ।

95. निर्णीत-ऋणी के अधिभोग में की संपत्ति का परिदान – जहां विक्रीत स्थावर संपत्ति निर्णीत-ऋणी के या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के या ऐसे हक के अधीन जिसे निर्णीत-ऋणी ने ऐसी संपत्ति की कुर्की हो जाने के पश्चात् सृष्ठ किया है, दावा करने वाले किसी व्यक्ति के अधिभोग में है और उसके बारे में प्रमाणपत्र नियम 94 के अधीन दिया गया है वहां न्यायालय क्रेता के आवेदन पर यह आदेश करेगा कि उस संपत्ति पर ऐसे क्रेता का या ऐसे

किसी व्यक्ति का जिसे क्रेता अपनी ओर से परिदान पाने के लिए नियुक्त करे, कब्जा करा कर और यदि आवश्यक हो तो ऐसे व्यक्ति को हटा कर जो उस संपत्ति को रिक्त करने से इनकार करता है, परिदान किया जाए ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

7. परिसीमा अधिनियम, 1963 का मद 134 भी तात्विक है, जो निम्न प्रकार से है :–

	आवेदन का विवरण	परिसीमा की अवधि	वह समय जिससे अवधि का चलना आरंभ होता है
134	किसी डिक्री के निष्पादन में स्थावर संपत्ति के विक्रय पर	एक वर्ष	जब विक्रय आत्यंतिक बन जाता है

8. मद 134 में यह उपबंधित है कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिसको विक्रय की पुष्टि की जाती है । आदेश 21 के नियम 92 के अधीन निष्पादन न्यायालय के लिए अपेक्षित है कि वह विक्रय की पुष्टि का आदेश करते हुए एक आदेश पारित करे । उक्त आदेश पारित करने के उपरांत, विक्रय आत्यंतिक बन जाता है । आदेश 21 के नियम 94 में क्रेता को एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की अपेक्षा की गई है । तथापि, प्रमाणपत्र की तारीख वह तारीख होगी जिसको विक्रय आत्यंतिक हुआ था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 95 को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर इसमें दो शर्तें सम्मिलित हैं, जो निम्नलिखित हैं :–

i विक्रय की गई स्थावर संपत्ति निर्णीत-ऋणी के या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के या ऐसे हक के अधीन जिसे निर्णीत-ऋणी ने ऐसी संपत्ति की कुर्की हो जाने के पश्चात् सृष्ठ किया है, दावा करने वाले किसी व्यक्ति के अधिभोग में होनी चाहिए ; और

ii विक्रय के संबंध में प्रमाणपत्र सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अधीन दिया गया हो ।

दोनों शर्तें पूरी हो जाने पर ही निष्पादन न्यायालय क्रेता के आवेदन पर नीलाम संपत्ति पर क्रेता का कब्जा कराकर कब्जे के परिदान का आदेश पारित करने के लिए सशक्त है । इस प्रकार, एक ओर, आदेश 21, नियम 95 में यह आदिष्ट है कि नीलाम-क्रेता द्वारा नीलाम संपत्ति के कब्जे के लिए आवेदन केवल आदेश 21 के नियम 94 के अनुसार विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने के पश्चात् ही किया जा सकता है । किंतु दूसरी ओर, आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए आरंभिक बिंदु परिसीमा अधिनियम के मद 134 के अनुसार वह तारीख है जिसको आदेश 21 नियम 92 के अनुसार विक्रय को आत्यंतिक किया जाता है । निष्पादन न्यायालय के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 94 के अनुसार विक्रय प्रमाणपत्र जारी करना आबद्धकर है । व्यावहारिक रूप से, हम प्राय: विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने में पर्याप्त विलंब होना देखते हैं । इस मामले में, विलंब छह माह से अधिक का है । बहुत से मामलों में, विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने में प्रक्रियात्मक विलंब होता है जिसके लिए नीलाम-क्रेता को दोष नहीं दिया जा सकता है ।

9. **पद्म खादेर खान** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का पैरा 11 और 12 इस प्रकार है :–

> "11. आदेश 21, नियम 95 में निर्णीत-ऋणी आदि के अधिभोग में की संपत्ति के परिदान के लिए प्रक्रिया का उपबंध करते हुए क्रेता द्वारा उस संपत्ति के कब्जे के परिदान के लिए, जिसके संबंध में आदेश 21, नियम 94 के अधीन एक प्रमाणपत्र दे दिया गया है, आवेदन किए जाने की अपेक्षा की गई है । <u>नियम 95 में ऐसा कुछ नहीं है जो क्रेता को आवेदन के साथ प्रमाणपत्र फाइल करने के लिए आबद्ध करता हो । विक्रय आत्यंतिक हो जाने पर, यद्यपि न्यायालय के लिए प्रमाणपत्र जारी करना आबद्धकर है । ऐसा करने में किन्हीं कारणों से विलंब हो सकता है । चाहे न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र जारी करने में असफलता या नीलामी</u>

करने में विलंब किया गया हो या विधिक अपेक्षाओं और औपचारिकताओं को पूरा करने में क्रेता की निष्क्रियता हो, ऐसी बातें हैं जिनका मद 134 के अधीन आवेदन करने के लिए विहित परिसीमा से कोई सरोकार नहीं है । क्रेता परिसीमा को इस आधार पर बढ़ाने की ईप्सा नहीं कर सकता कि प्रमाणपत्र जारी नहीं किया गया है । यद्यपि यह सत्य है कि कब्जे के परिदान के लिए आदेश तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक विक्रय प्रमाणपत्र जारी नहीं हो जाता है । अत: यह स्पष्ट है कि विक्रय प्रमाणपत्र का जारी किया जाना आवेदन के लिए 'अत्यावश्यक' नहीं है चूंकि ये दोनों विषय उसी न्यायालय के पास होते हैं । आवेदन के लिए परिसीमा का आरंभिक बिंदु वह तारीख होने के कारण जब विक्रय आत्यंतिक बन जाता है अर्थात् वह तारीख जिसको हक सक्रांत जाता है, विक्रय प्रमाणपत्र के रूप में हक का साक्ष्य जो न्यायालय से देय है, उसे सदैव आदेश 21, नियम 95 की अपेक्षाओं का समाधान करने के लिए बाद में न्यायालय को दिया जा सकता है । इस संबंध में बाबूलाल नत्थूलाल **बनाम** अन्नपूर्णाबाई [ए. आई. आर. 1953 नाग. 215 = आई. एल. आर. 1953 नाग. 557], जो कि एक सूचक है । अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय नीलाम-क्रेता का हक आदेश 21, नियम 92 के अधीन विक्रय के पुष्ट हो जाने पर पूर्ण हो जाता है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 95 के हस्तक्षेप के फलस्वरूप संपत्ति विक्रय की तारीख से क्रेता में निहित हो जाती है ; विक्रय का प्रमाणपत्र स्वयमेव कोई हक सृजित नहीं कर रहा होता है अपितु मात्र उसका साक्ष्य होता है । बल्कि विक्रय प्रमाणपत्र पहले ही पूर्ण हो गए तथ्य की यह उल्लेख करते हुए एक औपचारिक अभिस्वीकृति है कि क्या विक्रय किया गया था । न्यायालय का यह कार्य विशुद्ध रूप से एक अनुसचिवीय कार्य है न कि न्यायिक । यह कार्य स्पष्ट रूप से औपचारिक प्रकृति का है ।

12. इस विषय पर विधि की ऐसी स्थिति होने के कारण हमें समझ में नहीं आता कि उच्च न्यायालय कैसे इस निष्कर्ष पर पहुंच

सकता था कि भले ही विक्रय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 92 के अधीन पुष्टि हो जाने पर आत्यंतिक हो जाता है तो भी प्रभावी रूप से हक सक्रांत करने के लिए यह केवल तब पूर्ण हो सकता है जब आदेश 21, नियम 94 के अधीन जारी विक्रय प्रमाणपत्र का साक्ष्य हो और जब तक विक्रय प्रमाणपत्र जारी नहीं किया जाता है तब तक परिसीमा अधिनियम, 1963 के मद 134 के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 95 के अधीन आवेदन के प्रयोजन के लिए परिसीमा आरंभ नहीं हो सकती है । हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि केवल उस तारीख से, जब विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया जाता है, परिसीमा का चलना आरंभ होता है । उच्च न्यायालय के ऐसे दृष्टिकोण से न केवल परिसीमा अधिनियम के मद 134 के स्पष्ट उपबंधों का उल्लंघन होगा अपितु पहले ही स्थिर विधि को अस्थिर करना होगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

10. पैरा 11 में यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि आदेश 21 के नियम 95 में ऐसा कुछ नहीं है जो क्रेता को आवेदन के साथ विक्रय प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध करता हो । तथापि, आदेश 21 के नियम 95 को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर जब तक आदेश 21 के नियम 94 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र नहीं दिया जाता है, नीलाम-क्रेता को आदेश 21 के नियम 95 का अवलंब लेते हुए कब्जे के परिदान के लिए आवेदन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है । अत: पैरा 11 में अभिव्यक्त मत, प्रथमदृष्ट्या, सही नहीं हो सकता है । उक्त मत का समर्थन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 की स्पष्ट भाषा से नहीं होता है ।

11. इस प्रक्रम पर हम **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का उल्लेख कर सकते हैं । पैरा 11 में न्यायपीठ ने **पद्म खादेर खान** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 11 में जो अभिनिर्धारित किया गया है उसकी शुद्धता के बारे में संदेह व्यक्त

किया था । **यूनाइटेड फाइनेंस कार्पोरेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय का पैरा 11 इस प्रकार है :–

> "11. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 95 को सावधानीपूर्वक पढ़ने पर इस उपबंध की भाषा इस बात की सूचक है कि न्यायालय द्वारा की गई नीलामी में क्रय की गई संपत्ति के कब्जे के परिदान के लिए आवेदन वहां फाइल किया जा सकता है जहां उसके बारे में 'आदेश 21 के नियम 94 के अधीन एक प्रमाणपत्र दे दिया गया है' । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 95 की इस भाषा को ध्यान में रखते हुए कि 'उसके बारे में नियम 94 के अधीन प्रमाणपत्र दे दिया गया है वहां न्यायालय क्रेता के आवेदन पर यह आदेश करेगा कि परिदान किया जाए ....' । हमें पद्दम खादेर खान [पद्दम खादेर खान **बनाम** पद्दम सरदार खान (1996) 5 एस. सी. सी. 48] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण कि '.... नियम 95 में ऐसा कुछ नहीं है जो क्रेता के लिए आवेदन के साथ प्रमाणपत्र फाइल करना आबद्धकर करता हो' और '..... विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया जाना आवेदन के लिए आवश्यक नहीं है ....' के संबंध में स्वयं संदेह है । तथापि, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हम एक बृहत्तर न्यायपीठ को इस प्रश्न को निर्देशित करने के लिए तैयार नहीं हैं – क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए विक्रय प्रमाणपत्र का जारी किया जाना अत्यावश्यक है या नहीं और इस प्रश्न को खुला छोड़ा जाता है ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

तथापि, इस न्यायालय के समक्ष मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए उसने यह मत व्यक्त किया कि वह प्रश्न को एक बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित करने के लिए तैयार नहीं है । अत: एक समन्वित न्यायपीठ ने पहले ही एक प्रथमदृष्ट्या मत व्यक्त किया है कि **पद्दम खादेर खान**

(उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 11 में जो अभिनिर्धारित किया गया है, उस पर एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता हो सकती है ।

12. हमने पहले ही उन दोहरी शर्तों का उल्लेख किया है जो निष्पादन न्यायालय को नीलाम-क्रेता के पक्ष में कब्जे के परिदान का आदेश पारित करने के लिए समर्थ बनाने हेतु एक पूर्वभाव्य शर्त के रूप में पूरा किया जाना चाहिए । दो शर्तों में से एक शर्त यह है कि नीलाम-क्रेता, जो कब्जे के परिदान के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करता है, के पास अवश्य सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 94 के अधीन जारी किया गया एक विक्रय प्रमाणपत्र होना चाहिए । जब एक बार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अनुसार नीलाम विक्रय की पुष्टि कर दी जाती है तो निष्पादन न्यायालय, किसी वरिष्ठ न्यायालय के प्रतिषेधात्मक आदेश के अभाव में, नीलाम-क्रेता को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अनुसार विक्रय प्रमाणपत्र जारी करने के लिए आबद्धकर है । तथापि, विधि में उस विनिर्दिष्ट समय-सीमा के लिए उपबंध नहीं किया गया है जिसके भीतर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अधीन प्रमाणपत्र जारी किया जाना चाहिए । किसी प्रस्तुत मामले में, प्रमाणपत्र जारी करने में एक लंबा प्रक्रियात्मक विलंब हो सकता है जिसके लिए नीलाम-क्रेता को दोष नहीं दिया जा सकता । वर्तमान मामले में, विलंब छह माह से अधिक का है । **पद्दम खादेर खान** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति अत्यधिक सम्मान के साथ, प्रथमदृष्ट्या, हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन नीलाम-क्रेता को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 94 के अनुसार विक्रय का प्रमाणपत्र दिए जाने से पूर्व भी किया जा सकता है ।

13. अत: हमारे प्रथमदृष्ट्या मत में, सिविल प्रक्रिया संहिता के

आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की पुष्टि का आदेश नीलाम-क्रेता को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 का अवलंब लेते हुए कब्जे के लिए आवेदन करने हेतु वाद हेतुक नहीं देता है । वह ऐसा आवेदन तब तक नहीं कर सकता जब तक निष्पादन न्यायालय एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी नहीं कर देता है । यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता विक्रय प्रमाणपत्र जारी होने से पूर्व आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल किया जाना अनुज्ञात नहीं करती है, तो भी परिसीमा अधिनियम का मद 134 इस आधार पर अग्रसर होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की पुष्टि के आदेश के आधार पर कब्जे के लिए आवेदन करने हेतु नीलाम-क्रेता को वाद हेतुक उपलब्ध हो जाता है ।

14. अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम के मद 134 के उपबंधों के बीच स्पष्ट असंगति है । प्रश्न यह है कि क्या असंगति या विषमता को ठीक करने के लिए सोद्देश्य निर्वचन किया जा सकता है । हम यहां यह उल्लेख कर सकते हैं कि यदि प्रमाणपत्र जारी करने में विलंब निष्पादन न्यायालय द्वारा किया गया है, तो आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन फाइल करने में विलंब को माफ नहीं किया जा सकता क्योंकि आदेश 21 के अधीन फाइल किए गए आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है ।

15. **एफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **चेरियन वर्की कंस्ट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 20 और 21 में सोद्देश्य निर्वचन के मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की गई है । उक्त दोनों पैरा इस प्रकार हैं :–

> "कानूनी निर्वचन के सिद्धांत भली-भांति स्थिर हैं । जहां कानून के शब्द स्पष्ट और असंदिग्ध हैं वहां उपबंध को, कोई शब्द जोड़े या नामंजूर किए बिना, इसका स्पष्ट और सामान्य अर्थ दिया जाना

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 24.

चाहिए । एक स्पष्ट कानूनी उपबंध में निर्वचन के बहाने संरचनात्मक परिवर्तन करके या शब्दों को प्रतिस्थापित करके शाब्दिक नियम से विचलन करने से एक बड़ी जोखिम का सामना करना होगा क्योंकि ये परिवर्तन हो सकता है ऐसे न हों जो विधानमंडल का आशय या इच्छा न रही हो । विधायी प्रज्ञा को न्यायाधीशों के दृष्टिकोणों द्वारा बदला नहीं जा सकता । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कुछ भिन्न संदर्भ में मत व्यक्त किया गया है –

> '6. .... जब विधानमंडल द्वारा कोई प्रक्रिया विहित की जाती है, तो न्यायालय को न्याय की अपनी धारणा के अनुसार एक भिन्न प्रक्रिया को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए । जब विधानमंडल ने स्पष्ट व्यक्त किया हो, न्यायाधीशों को अधिक बुद्धिमानी नहीं दिखानी चाहिए ।' [श्री मंदिर सीता राम जी **बनाम** उप राज्यपाल, दिल्ली, (1975) 4 एस. सी. सी. 288, एस. सी. सी. पृ. 301, पैरा 6 देखें] ।

21. तथापि, इस साधारण नियम का एक अपवाद है । जहां कानूनी उपबंध में प्रयुक्त शब्द अस्पष्ट और संदिग्ध हैं या जहां इसके शब्दों का स्पष्ट और प्रसामान्य अर्थ या उसका व्याकरणिक अर्थान्वयन के परिणामस्वरूप भ्रम, असंगति और अन्य उपबंधों के साथ विरोध है, तो न्यायालय स्पष्ट और व्याकरणिक अर्थान्वयन अपनाने के बजाय कानून में शब्दों को जोड़कर या लोप करके या प्रतिस्थापित करके स्थिति को ठीक करने के लिए निर्वचनकारी साधन का प्रयोग कर सकते हैं । जब किसी कानून में स्पष्ट रूप से त्रुटियुक्त उपबंध का सामना होता है, तो न्यायालय यह धारणा करेंगे कि प्रारूपकर्ता ने कोई गलती की थी बजाय यह निष्कर्ष निकालने के कि विधानमंडल ने जानबूझकर एक अस्पष्ट या असंगत कानूनी उपबंध पुर:स्थापित किया है । तथापि, स्पष्ट और साफ-साफ पठन के शाब्दिक नियम से विचलन केवल आपवादिक दशाओं में वहां किया जा सकता है, जहां विषमताओं के कारण

किसी उपबंध के शाब्दिक अनुपालन असंभव या इतना बेतुका या अव्यावहारिक बन जाता है जिससे उपबंध का उद्देश्य ही विफल हो जाए । हम अस्पष्टता और असंगति को दूर करने के लिए सोद्देश्य निर्वचन का भी उल्लेख कर सकते हैं जिसका सारभूत उपबंधों के प्रति निर्देश करने की बजाय प्रक्रियात्मक उपबंधों के संबंध में अधिक तत्परता और आसानी से प्रयोग किया जाता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

16. सामान्य नियम के रूप में, कानून का निर्वचन करते समय न्यायालय शब्दों को नहीं जोड़ेगा या लोप नहीं करेगा या प्रतिस्थापित नहीं करेगा । तथापि, इस नियम का एक भली-भांति मान्यताप्राप्त अपवाद है जो **इंको यूरोप लिमिटेड और अन्य** बनाम **फर्स्ट च्वायस डिस्ट्रीब्यूशन (ए फर्म) और अन्य**[1] वाले मामले में हाउस आफ लार्ड्स के एक विनिश्चय में पाया जाता है, जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था :–

"न्यायालय अवश्य प्रारूपण संबंधी स्पष्ट गलतियों को ठीक करने में समर्थ होना चाहिए । उपयुक्त मामलों में, न्यायालय अपने निर्वचनकारी कार्य का निर्वहन करते हुए शब्दों को जोड़ेगा, या शब्दों का लोप करेगा या शब्दों को प्रतिस्थापित करेगा । कुछ महत्वपूर्ण दृष्टांत प्रोफेसर सर रूपर्ट क्रास की प्रशंसनीय लघु-रचना, स्टेच्यूटरी इंटरप्रिटेशन, तीसरा संस्करण (1995), पृ. 93-105 में दिए गए हैं । उन्होंने पृ. 103 पर यह टिप्पणी की है –

'शब्दों का लोप करने या सम्मिलित करने में न्यायाधीश वास्तव में प्रारूपकर्ता या विधानमंडल के आशय का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण करने का काम नहीं करता है अपितु कानूनी उपबंध के पाठ का केवल इतना अर्थ लगाने का काम कर रहा होता है जो इसके समुचित संदर्भ में पठन करने के

[1] (2000) 2 ऑल ई. आर. 109.

लिए और न्यायिक भूमिका की सीमाओं के भीतर वह कर सकता है ।'

यह शक्ति प्रारूपण करने की स्पष्ट गलतियों के मामलों तक सीमित है । न्यायालय सदैव सतर्क रहते हैं कि इस क्षेत्र में उनकी सांविधानिक भूमिका निर्वचनकारी है । उन्हें ऐसी किसी प्रक्रिया से अवश्य बचना चाहिए जिसमें न्यायिक विधायन का आभास हो । कानून विधानमंडल द्वारा अनुमोदित भाषा में अभिव्यक्त और अधिनियमित किया जाता है । इसलिए न्यायालय शब्दों को जोड़ने या लोप करने या प्रतिस्थापित करने से पूर्व पर्याप्त सावधानी बरतते हैं । इस प्रकार किसी कानून का निर्वचन करने से पूर्व न्यायालय को तीन बातों से पूरी तरह से सुनिश्चित हो जाना चाहिए – (1) कानून या प्रश्नगत उपबंध का आशयित प्रयोजन ; (2) यह कि अनवधानतापूर्वक प्रारूपकर्ता और संसद प्रश्नगत उपबंध में उस प्रयोजन को प्रभावी करने में असफल रहे थे ; और (3) यदि विधेयक में गलती का पता चल गया होता, तो संसद् ने उपबंध का सार दिया होता और यद्यपि संसद् द्वारा आवश्यक रूप से स्पष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया होता । अन्यथा अधिनियमिति के अर्थ का अवधारण करने के किसी प्रयत्न से अर्थान्वयन और विधान के बीच की सीमा पार हो जाएगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

17. उक्त विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांत को **सुरजीत सिंह कालरा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दोहराया गया था । पैरा 19 में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

"19. यह सही है कि किसी कानून में उन शब्दों को पढ़ना अनुज्ञेय नहीं है जो उसमें नहीं है, किंतु 'जहां या तो विवक्षित रूप

[1] (1991) 2 एस. सी. सी. 87.

से उन शब्दों का उल्लेख करना जिनका आकस्मिक रूप से लोप हो जाना प्रतीत होता है, या ऐसा अर्थान्वयन ग्रहण करना जो कतिपय विद्यमान शब्दों के सभी अर्थों को वंचित करता हो, के बीच स्थित अनुकल्प है, वहां शब्दों को प्रदान करना अनुज्ञेय है' (क्रेज स्टैच्यूट ला, 7वां संस्करण, पृ. 109) । इसी प्रकार की मताभिव्यक्तियां हमीदा हार्डवेयर स्टोर्स **बनाम** बी. मोहन लाल सावकर [(1988) 2 एस. सी. सी. 513, 524-25] वाले मामले में की गई हैं जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि न्यायालय को किसी उपबंध का अर्थान्वयन करते हुए आसानी से उन शब्दों का अंतर्निहित अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिन्हें अभिव्यक्त रूप से अधिनियमित नहीं किया गया है किंतु उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें कोई उपबंध प्रतीत होता है और कानून के उस उद्देश्य का जिसमें उक्त उपबंध अधिनियमित किया गया है, न्यायालय को इसे सार्थक बनाने के लिए एक सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करना चाहिए । सुसंगत उपबंधों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सदैव ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए जिससे कानून द्वारा आशयित उपचार अग्रसर हो सके । {सिराजुल हक खान **बनाम** केंद्रीय सुन्नी वक्फ बोर्ड [1959] एस. सी. आर. 1287, 1299 = ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 198} ।"

18. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के सुसंगत उपबंधों पर वापस आते हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 92 के उप नियम (1) और 94 का संयुक्त रूप से पठन करने पर यह स्पष्ट है कि आदेश 21, नियम 92 के उप नियम (1) के अधीन विक्रय की संपुष्टि के आदेश की परिणति आदेश 21 के नियम 94 के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र प्रदान करके होती है । विक्रय प्रमाणपत्र में सम्मिलित की जाने वाली विक्रय की तारीख विक्रय की संपुष्टि का आदेश पारित करने की तारीख है । आदेश 21 के नियम 94 में एक विक्रय प्रमाणपत्र जारी किए जाने की अपेक्षा को सम्मिलित किया गया है, इस वास्तविकता से ही यह दर्शित होता है कि विधानमंडल का यह दृष्टिकोण था कि मात्र नीलामी की पुष्टि का आदेश पर्याप्त नहीं हो सकेगा । प्रमाणपत्र

अंततोगत्वा इस तथ्य का साक्ष्य है कि जिस व्यक्ति को प्रमाणपत्र जारी किया जाता है, उसके पक्ष में नीलामी की निष्पादन न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है ।

19. प्रथमदृष्ट्या, हमें यह प्रतीत होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 और परिसीमा अधिनियम के मद 134 के बीच असंगति से बचने का एकमात्र तरीका यह है कि मद 134 को इस प्रकार पढ़ा जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए आरंभिक बिंदु वह तारीख है जिस तारीख को नीलाम विक्रय की पुष्टि अभिलिखित करते हुए वास्तव में क्रेता को प्रमाणपत्र जारी किया जाता है । ऐसे निर्वचन से **इंको यूरोप लिमिटेड और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले अधिकथित की गई तीनों कसौटियों का समाधान हो जाएगा । अत: हमारे सुविचारित मत में, **पद्दम खादेर खान** (उपर्युक्त) वाले मामले में समन्वित न्यायपीठ के विनिश्चय और विशेष रूप से जो पैरा 11 में अभिनिर्धारित किया गया है, बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है । हमारे सुविचारित मत में, बृहत्तर न्यायपीठ को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 95 के अधीन आवेदन करने के लिए परिसीमा के आरंभिक बिंदु से संबंधित विवाद्यक का विनिश्चय करना होगा । हम रजिस्ट्रार (जे-I) को इस आदेश की प्रति के साथ इस अपील को भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत करने का निदेश देते हैं जिससे कि वे प्रशासनिक स्तर पर समुचित विनिश्चय करने के लिए समर्थ हो सकें ।

मामला बृहत्तर न्यायपीठ के लिए निर्देशित किया गया ।

जस.

[2023] 2 उम. नि. प. 271

रवि मंडल

बनाम

उत्तराखंड राज्य

[2011 की दांडिक अपील सं. 511]

तथा

शब्बीर

बनाम

उत्तराखंड राज्य

[2011 की दांडिक अपील सं. 2345]

18 मई, 2023

न्यायमूर्ति ऋषिकेश राय और न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 34 और 201 – हत्या – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य – दोषसिद्धि – मृतक का शव जंगल में पाया जाना – मृतक को अभिकथित रूप से अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखा जाना – मृतक के पिता द्वारा दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित अभियुक्तों में से एक अभियुक्त के स्थान पर बाद में एक अन्य अभियुक्त को नामित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की दोषसिद्धि – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ देखे जाने के बारे में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई उल्लेख न हो और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा ऐसा प्रकटन घटना के तीन माह से अधिक समय के पश्चात् किया गया हो और इतने दिनों तक चुप्पी साधे रखने के लिए दिया स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक न पाया गया हो, मृतक का शव पाए जाने के बारे में पुलिस साक्षियों और मृतक के पिता-इत्तिलाकर्ता के कथन अलग-अलग हों, घटना में प्रयुक्त आयुध के संबंध

में न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट को अभियुक्त की परीक्षा करने के दौरान उसे न बताया गया हो, साक्षियों के साक्ष्य में विसंगतियां पाई गई हों, वहां ऐसे अविश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता ।

अपील के तथ्यों के अनुसार मृतक के पिता (अभि. सा. 1) ने तारीख 1 नवंबर, 2001 को एक जंगल में अपने पुत्र का शव मिलने पर पुलिस थाना लालकुआं, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसमें यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में मृतक अपने मित्र गोविंद और रवि बंगाली (बाद में जिसकी रवि मंडल के रूप में शनाख्त की गई) के साथ था ; गोविंद, जो एक अपराधी है, उसके पुत्र को गलत रास्ता चुनने के लिए प्रभावित कर रहा था ; इसलिए उसे संदेह है कि इन व्यक्तियों ने उसके पुत्र की हत्या की और उसके शव को जंगल में छिपा दिया । उसके पश्चात् अभि. सा. 1 ने तारीख 10 नवंबर, 2001 को पुलिस को यह उल्लेख करते हुए एक लिखित इत्तिला दी कि वह गोविंद नहीं अपितु शब्बीर था जो उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को रवि और मज़हर खान के साथ मृतक के साथ था । इस लिखित इत्तिला में यह अभिकथन किया गया कि बबलू (अभि. सा. 7) ने उसे गोविंद का नाम लेने के लिए भ्रमित किया था । अन्वेषण के दौरान पुलिस ने दो अभियुक्तों अर्थात् इस अपील में अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया और शब्बीर से एक 12 बोर की देसी पिस्तौल सहित एक जिंदा कारतूस और रवि मंडल से एक चाकू की बरामदगी की, जिसके परिणामस्वरूप दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आयुध अधिनियम के अधीन दो अलग-अलग मामले दर्ज किए गए । अन्वेषण पूर्ण होने पर तीन आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए जिनके परिणामस्वरूप तीन सेशन विचारण उद्भूत हुए, जिन्हें एक-साथ संबद्ध किया गया । विचारण न्यायालय ने साक्षियों (अभि. सा. 2 और 5) के अभिसाक्ष्यों का यह निष्कर्ष निकालने के लिए अवलंब लिया कि मृतक को अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित उस जंगल/स्थान की ओर जाते हुए देखा गया था जहां से मृतक का शव बरामद हुआ था । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि उस रात्रि को चंद्रमा की रोशनी होने

के संबंध में कोई विवाद नहीं है और अभियुक्तों तथा मृतक की शनाख्त करने के लिए साक्षियों के सामर्थ्य को कोई चुनौती नहीं दी गई है । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार घटनास्थल से बरामद खाली कारतूस उसी पिस्तौल से दागा गया था जो अभियुक्त शब्बीर के कब्जे से बरामद की गई थी और चूंकि शव-परीक्षा रिपोर्ट से यह पुष्टि हुई थी कि मृतक की मृत्यु अग्न्यायुध का प्रयोग करके कारित की गई थी । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक की हत्या की थी और साक्ष्य छिपाने के लिए मृतक के शव को जंगल में फेंक दिया था और उन्हें दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई । अभियुक्तों द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले की विलक्षण विशेषता यह है कि मामले की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जंगल में इत्तिलाकर्ता के पुत्र का शव पाए जाने के पश्चात् तारीख 1 नवंबर, 2001 को 7.30 बजे अपराह्न में दर्ज की गई थी । पुलिस साक्षियों के परिसाक्ष्य के अनुसार, वह इत्तिलाकर्ता ही था जिसने पुलिस को जंगल में उसके पुत्र का शव पाए जाने के बारे में इत्तिला दी थी और उसके पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण आरंभ हुआ था । जबकि अभि. सा. 1 के अनुसार, उसे पुलिस ने सूचित किया था कि उसके पुत्र का शव जंगल में पाया गया है और उसके पश्चात् वह घटनास्थल पर गया, शव को पुलिस थाने लाया और फिर रिपोर्ट दर्ज कराई । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में यह विभेद महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या अभियोजन का पक्षकथन इत्तिलाकर्ता की स्वयं की जानकारी और सूचना पर आधारित है या सुझावों और अटकलबाजी पर, जो पुलिस की प्रेरणा पर हो सकता है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस बारे में कोई प्रकटीकरण नहीं है कि उस जंगल में शव कैसे पाया गया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में केवल यह प्रकटीकरण है कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में इत्तिलाकर्ता के पुत्र को उसके मित्र गोविंद (जिसे अभियुक्त

नहीं बनाया गया है) और रवि बंगाली के साथ देखा गया था । पूर्वोक्त दो व्यक्तियों के साथ मृतक को किसने देखा था, इस बारे में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई खुलासा नहीं किया गया है । निस्संदेह, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से विश्वशब्दकोश होने की अपेक्षा नहीं की जाती है और उसमें उन सभी साक्षियों के नाम का उल्लेख होना आवश्यक नहीं है जिनसे सूचना प्राप्त होती है किंतु महत्वपूर्ण यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में रवि बंगाली के अतिरिक्त गोविंद नामक व्यक्ति के विरुद्ध संदेह व्यक्त किया गया था, जो कथित रूप से एक आपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है और इत्तिलाकर्ता के पुत्र को गलत रास्ते पर जाने के लिए प्रभावित कर रहा था और शब्बीर अर्थात् अपीलार्थियों में से एक के बारे में कोई प्रकटीकरण नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में आश्चर्यजनक रूप से जिस बात का उल्लेख नहीं है वह यह है कि छोटू (मृतक) और उसके मित्रों को दुर्भाग्यपूर्ण सायंकाल में एक चलचित्र (मुवी) का रात्रि शो देखना था और इसलिए छोटू ने अभि. सा. 7 को अपने माता-पिता (अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3) से भोजन लाने के लिए भेजा था । अभियोजन की कहानी जो बाद में विकसित की गई, इस आशय से की है कि छोटू द्वारा अभि. सा. 7 (बबलू) को अपने लिए और अपने मित्रों के लिए उसके घर से भोजन लाने के लिए भेजा गया था और छोटू की माता (अभि. सा. 3) ने टिफिन के डिब्बों में भोजन भेजा था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहानी का यह भाग पूरी तरह से गायब है, यद्यपि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मृतक के पिता द्वारा दर्ज कराई गई थी जिसे, उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार, इस बारे में जानकारी थी । इन सभी बातों से यह संदेह पैदा होता है कि क्या कहानी में बाद में किए गए सुधार नए जोड़े गए साक्षियों की सहायता से साक्ष्य में कड़ी सृजित करने के लिए थे । यह संदेह अभि. सा. 10 द्वारा दिए गए इस अभिसाक्ष्य से सुदृढ़ होता है कि अन्वेषण के दौरान अभि. सा. 1 ने यह खुलासा किया था कि मृतक घर नहीं आ रहा था और इसलिए यह जांच-पड़ताल करने के लिए कि क्या मृतक के लिए भोजन पैक करने का अभि. सा. 7 का अनुरोध सच्चा था या नहीं, अभि. सा. 1 अभि. सा. 7 के पीछे-पीछे गया था और फिर उसने छोटू, रवि बंगाली को एक-साथ देखा था और कुछ

दूरी पर शब्बीर भी वहां था । महत्वपूर्ण रूप से, अभि. सा. 1 ने न्यायालय में अपने अभिसाक्ष्य के दौरान ऐसा कोई प्रकटीकरण नहीं किया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि साक्षियों की संख्या को बढ़ाने का जानबूझकर प्रयत्न किया गया था । अभियोजन के पक्षकथन में एक अन्य महत्वपूर्ण सुधार इसकी बुनियाद अर्थात् हेतु के विषय में है । आरंभ में, अपराध का हेतु गोविंद के साथ दुश्मनी होना था । किंतु बाद में जब गोविंद को जीवित नहीं पाया गया था, तो उसके स्थान पर शब्बीर को अभियुक्त के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था । इन सभी परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर न्यायालय के मस्तिष्क में इस बारे में संदेह उत्पन्न होता है कि क्या यह गुप्त हत्या का एक सर्वोत्कृष्ट मामला है (अर्थात् जो रात के अंधेरे में एकांत स्थान में घटित हुआ था जहां अपराध को कोई नहीं देख सकता था), इसलिए मामले को सुलझाने के लिए साक्षियों की टोह में अभियोजन की कहानी को या तो समय-समय पर प्राप्त सूचना के आधार पर या गंभीर संदेह या पुलिस के सुझावों से प्रकटित अटकलबाजी के आधार पर विकसित किया गया है । इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के मत में, यह ऐसा मामला है जहां अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की इसके आधार पर दोषसिद्धि करने से पूर्व पूरी सावधानी से, इस बात को विचार में लाए बिना कि अभियुक्तों के विरुद्ध उनकी कोई साबित दुश्मनी थी या नहीं, यह अभिनिश्चित करने के लिए कड़ाईपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए थी कि क्या यह साक्ष्य विश्वसनीय, भरोसेमंद/विश्वासप्रद और सत्य है या नहीं । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जब यह न्यायालय अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की संवीक्षा करता है तो पाता है कि अभियोजन का पक्षकथन प्राथमिक रूप से मृतक को घटनास्थल के निकट दोनों अभियुक्तों के साथ घटना के समय या लगभग अधिसंभाव्य समय पर अर्थात् तारीख 31 अक्तूबर, 2001/1 नवंबर, 2001 की लगभग अर्ध-रात्रि में अंतिम बार एक-साथ जीवित देखे जाने के साक्ष्य पर आधारित है । ऐसा साक्ष्य दो साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 (चंदन सिंह) और अभि. सा. 5 (महेन्द्र खुराना) से आया है । जहां तक अभि. सा. 6 का संबंध है, यह न्यायालय उसे विश्वसनीय नहीं समझता है क्योंकि प्रथमत:, उसे शब्बीर द्वारा मृतक

पर बंदूक से गोली चलाने के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में स्थापित किया गया था किंतु उसने बंदूक से ऐसी गोली चलाते हुए देखे जाने की बात से इनकार किया था और द्वितीयतः, प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कथन किया था कि उसने घटना नहीं देखी थी । (पैरा 19-23)

प्रस्तुत मामले में, अभि. सा. 2 द्वारा अपनी साढ़े तीन माह तक की चुप्पी के लिए दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यह है कि वह डरा हुआ था । अभि. सा. 2 ने अपने डर के संबंध में यह कथन किया था कि घटना की रात्रि में जब उसने रवि बंगाली और शब्बीर अहमद को घटना के कुछ पश्चात् जंगल से निकलते हुए देखा था, तब उसने उनके हाथ और वस्त्र रक्त-रंजित देखे थे । अभि. सा. 2 को देखकर उन दोनों अभियुक्तों ने उसे यह कहते हुए धमकी दी थी कि यदि वह (अभि. सा. 2) किसी को जो उसने देखा है उस बारे में बताएगा तो उसका भी वही अंजाम होगा । अभि. सा. 2 ने यह कथन किया था कि दोनों अभियुक्तों के गिरफ्तार होने पर उसका डर दूर हो गया था इसलिए वह अब साक्षी के रूप में उपसंजात हो रहा है । इस न्यायालय के मत में, यदि पहले प्रकटीकरण न करने के लिए उसके लिए यह कारण था तो जब एक बार अभियुक्त गिरफ्तार कर लिए गए थे, तो उसके द्वारा तत्परता से प्रकटीकरण किया जाना चाहिए था । महत्वपूर्ण रूप से, दोनों अभियुक्त तारीख 24 नवंबर, 2001 को गिरफ्तार किए गए थे, तो भी तारीख 18 फरवरी, 2002 तक उसके द्वारा कोई प्रकटीकरण नहीं किया गया था । इसलिए हमारे सुविचारित मत में, उसके द्वारा प्रकटीकरण करने में विलंब के लिए दिया गया स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक नहीं है । मान लिया जाए कि प्रकटीकरण करने में विलंब के लिए स्पष्टीकरण को घटना के स्थान और समय पर विचार करते हुए स्वीकार कर भी लिया जाए, तो भी अभि. सा. 2 की घटनास्थल पर, विशिष्ट रूप से, उस घनी रात्रि में मौजूदगी स्वाभाविक प्रतीत नहीं होती है । अभि. सा. 2 ने घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी को स्पष्ट करने के लिए यह कथन किया था कि उसके माता-पिता मोहल्ला खट्टा में एक अन्य स्थान पर रहते हैं और इसलिए उनसे मिलने के लिए वह उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को उनके पास गया था और वापस आते हुए रास्ते में उसने घटना देखी थी ।

अभि. सा. 2 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कहा कि वह रात्रि का भोजन आम तौर पर 9.00 बजे रात्रि में अपने परिवार के साथ करता है और वह सप्ताह में एक बार अपने माता-पिता के पास जाता रहता है । अभि. सा. 2 के अनुसार, उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को वह स्वयं अपने मकान में रात्रि का भोजन लेने के पश्चात् अपने माता-पिता के पास जाने के लिए अपने मकान से गया था और वापस आते हुए रास्ते में 12.30 बजे रात्रि में उसने घटना देखी थी । यह स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक नहीं है, विशिष्ट रूप से क्योंकि उसके माता-पिता से रात्रि के उस विषम समय में उनके मकान पर अभि. सा. 2 के जाने की बात की संपुष्टि करने के लिए परिप्रश्न नहीं किए गए थे या परीक्षा नहीं की गई थी । इस न्यायालय के मत में, अभि. सा. 2 मात्र एक संयोगी साक्षी है जिसकी उस समय पर घटनास्थल पर मौजूदगी के लिए समाधानप्रद रूप से स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है इसलिए इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वह अप्रायिक रूप से लंबे समय अर्थात् साढ़े तीन माह से अधिक समय तक चुप्पी साधे रहा था इसलिए उसका परिसाक्ष्य किसी विश्वास के योग्य नहीं है । हमारे मत में, निचले न्यायालयों ने उसके परिसाक्ष्य का अवलंब लेकर गलती की है । (पैरा 24 और 25)

जहां तक अभि. सा. 5 (महेन्द्र खुराना) के परिसाक्ष्य का संबंध है, वह भी एक संयोगी साक्षी है । किसी संयोगी साक्षी के परिसाक्ष्य का कब अवलंब लिया जा सकता है, इस बारे में विधि स्थिर है जो यह है कि किसी संयोगी साक्षी के साक्ष्य की संवीक्षा अति सावधानीपूर्वक और सूक्ष्मता से की जानी चाहिए और संयोगी साक्षी को अवश्य घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करना चाहिए । ऐसे संयोगी साक्षी के अभिसाक्ष्य को त्यक्त कर दिया जाना चाहिए जिसकी घटनास्थल पर मौजूदगी संदेहपूर्ण हो । अभि. सा. 5 द्वारा उस विषम समय पर घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी के लिए दिया गया स्पष्टीकरण मिथ्या प्रतीत होता है । अभि. सा. 5 के अनुसार, उसका पेट खराब था इसलिए एक चलचित्र (मुवी) का रात्रि शो देखते समय शौच करने जाने के लिए वह सिनेमा हाल से बाहर आया था और जब वह शौच कर रहा था तब उसने घटना देखी थी । यह उल्लेखनीय है कि

अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 10) और अभि. सा. 7, उस सिनेमा हाल में एक चने बेचने वाले ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि सिनेमा हाल में शौचालय हैं जहां उनका उपयोग करने के लिए कोई धन नहीं लिया जाता है । इससे अभि. सा. 5 का यह स्पष्टीकरण मिथ्या हो जाता है कि वह शौच करने के लिए सिनेमा हाल से इसलिए बाहर गया था क्योंकि सिनेमा हाल शौचालय के उपयोग के लिए धन लेता था । अन्यथा भी, अभि. सा. 10 (अन्वेषण अधिकारी) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कहा था कि उसे वह स्थान नहीं दिखाया गया था, जहां अभि. सा. 5 शौच करने के लिए बैठा था । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 5 एकमत नहीं रहा है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अपने कथन में, जिससे उसके अभिसाक्ष्य के दौरान उसका सामना कराया गया था, उसने गोविंद, रवि बंगाली और शब्बीर को यह कहते हुए अभ्यारोपित किया था कि सभी तीनों मृतक के साथ मौजूद थे किंतु न्यायालय में अपना अभिसाक्ष्य देने के दौरान उसने यह कथन किया कि गोविंद मौजूद नहीं था । वह उस स्थान के संबंध में भी एकमत नहीं है जहां उसका कथन अभिलिखित किया गया था । एक स्थान पर उसने यह कहा है कि कथन पुलिस थाने में अभिलिखित किया गया था और दूसरे स्थान पर उसने कहा है कि यह उसकी दुकान पर अभिलिखित किया गया था । (पैरा 26, 27 और 28)

इसके अतिरिक्त, इस मामले की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अभि. सा. 10 (अन्वेषण अधिकारी) के अनुसार अभि. सा. 5 का कथन उसके द्वारा तारीख 1 नवंबर, 2001 को अभि. सा. 5 के मकान पर अभिलिखित किया गया था । अभि. सा. 5 का कथन अभिलिखित करने के लिए उसके निवास पर जाने के लिए पुलिस के लिए क्या कारण था, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रकट नहीं किया गया है । हम इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं पाते हैं कि पुलिस क्यों अभि. सा. 5 के निवास पर उसका कथन अभिलिखित करने के लिए जाएगी जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटनास्थल पर अभि. सा. 5 की मौजूदगी के बारे में या घटना के बारे में उसे जानकारी होने के संबंध में कोई प्रकटीकरण नहीं किया गया है । इन सभी परिस्थितियों से इस न्यायालय के मस्तिष्क में यह

संदेह पैदा होता है कि क्या जंगल में शव का पता चलने पर अभियुक्तों को तथ्यों से परिचित व्यक्तियों से प्राप्त सूचना की बजाय पुलिस की प्रेरणा पर संदेह के आधार पर फंसाया गया था । उपरोक्त सभी कारणों से, जब हम अभि. सा. 2 और अभि. सा. 5 के परिसाक्ष्य का सावधानीपूर्वक और सम्यक् सतर्कता से मूल्यांकन करें, जैसा कि मामले के तथ्यों में अपेक्षित है, हम पाते हैं कि उनके परिसाक्ष्य से दोषसिद्धि संधार्य करने के बारे में हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है । दुर्भाग्यपूर्ण रूप से, निचले न्यायालयों ने इसे स्थिर विधिक सिद्धांतों की कसौटी पर परखे बिना वेदवाक्य के रूप में स्वीकार किया जिसके परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हानि हुई है । अत: इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतक को सुसंगत समय पर घटनास्थल के निकट अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखा गया था । जहां तक अभियुक्तों की गिरफ्तारी के समय पर उनसे देसी पिस्तौल और चाकू की बरामदगी होने का संबंध है, इससे निम्नलिखित कारणों से हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है – अभि. सा. 10, अन्वेषण अधिकारी के अनुसार जब वह संदिग्धों/अभियुक्तों की तलाश कर रहा था तब एक भेदिए से यह जानकारी मिली कि अभियुक्त 4.00 बजे अपराह्न में एक विनिर्दिष्ट स्थान पर आने वाले हैं । किंतु उक्त जानकारी प्राप्त होने का कोई उल्लेख नहीं है । यद्यपि यह कहा गया है कि यह जानकारी कार्रवाई से कुछ घंटे पहले प्राप्त हुई थी । यह मान लिया जाए कि ऐसी जानकारी प्राप्त हुई थी, तो भी किसी लोक साक्षी को संबद्ध करने का कोई प्रयास किया गया प्रतीत नहीं होता है हालांकि अभि. सा. 10 के अनुसार घटनास्थल से एक बस्ती लगभग 200 मीटर दूर थी । अंत में, सबसे रोचक बात यह है कि अन्वेषण अधिकारी, जिसने आयुध अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में मामले का अन्वेषण किया था, ने गिरफ्तारी/बरामदगी के स्थान का स्थल नक्शा तारीख 6 दिसंबर, 2001 को तैयार किया था यद्यपि गिरफ्तारी अभिकथित रूप से 24 नवंबर, 2001 को की गई थी, जिससे मामले के तथ्यों में यह सुझाव मिलता है कि यह औपचारिकता पूरी करने के लिए एक कवायद

थी । इसके अतिरिक्त, स्थल नक्शा से वह स्थान प्रकट नहीं होता है जहां अभियुक्तों को घात लगाकर पकड़ने के लिए जीप को जंगल में छिपाया गया था । ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों को इस तथ्य सहित ध्यान में रखते हुए कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में शब्बीर को एक संदिग्ध के रूप में नामित नहीं किया गया था और उसका नाम बाद में अभि. सा. 5 के कथन में निकलकर आया था जिसका कथन उसी दिन उसके निवास पर अभिलिखित किया गया था, यद्यपि उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में एक साक्षी के रूप में उद्धृत नहीं किया गया था, अभि. सा. 1 के इस कथन को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस ने शब्बीर को अभ्यारोपित करते हुए दूसरी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, हमारा यह मत है कि पुलिस ने शब्बीर को फंसाने में असाधारण रुचि दिखाई थी और इसलिए उपरोक्त सभी कारणों से अपीलार्थियों से बंदूक और चाकू की दिखाई गई अभिकथित बरामदगी से हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है । हमारे सुविचारित मत में, दोषसिद्ध संधार्य करने के लिए ऐसी बरामदगी का अवलंब लेना असुरक्षित होगा । जहां तक न्यायालयिक रिपोर्ट/प्राक्षेपिकी रिपोर्ट का संबंध है, इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन शब्बीर, जिससे देसी पिस्तौल अभिगृहीत की गई थी, का कथन अभिलिखित करते हुए उसके समक्ष नहीं रखा गया था, इसलिए किसी भी स्थिति में इसे विचारणा से दूर रखा जाना होगा । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रस्तुत मामला एक ऐसा सर्वोत्कृष्ट मामला है जहां अज्ञात हत्या, जो रात के अंधेरे में एक जंगल में घटी थी, को सुलझाने के लिए साक्ष्य के टुकड़े-टुकड़े एकत्रित किए गए थे जिनके आधार पर दोषसिद्धि करने से पूर्व गहराई से संवीक्षा करने की आवश्यकता थी । अभियोजन के साक्ष्य की गहराई से संवीक्षा करने और ऊपर चर्चा किए गए स्थिर विधिक सिद्धांतों की कसौटी पर इसे परखने के पश्चात्, हम इस साक्ष्य को अभियुक्त अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए विश्वासोत्पादक नहीं पाते हैं । हमारे मत में, निचले न्यायालय सही विधिक सिद्धांतों को लागू करके साक्ष्य का उचित रूप से मूल्यांकन और परीक्षण करने में असफल रहे हैं । इन परिस्थितियों में, निचले न्यायालयों के निर्णय अपास्त किए

जाने योग्य हैं । परिणामतः, ये अपीलें मंजूर की जाती हैं । उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थियों को उन सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है जिनके लिए उनका विचारण किया गया था और दोषसिद्ध किया गया था । (पैरा 29, 30, 31, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2022]	(2022) 12 एस. सी. सी. 200 : **राजेश यादव और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	26
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 719 : **जरनैल सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	26
[1973]	[1973] 3 उम. नि. प. 1286 = (1973) 2 एस. सी. सी. 808 : **काली राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 511 (इसके साथ 2011 की दांडिक अपील सं. 2345).

2004 की दांडिक अपील सं. 54 और 59 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा तारीख 7 अप्रैल, 2010 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री गोपाल झा (न्याय-मित्र), (सुश्री) अंकिता गौतम, डा. ए. के. गौतम, रवि मेहरोत्रा, नितिन जुयाल, अशोक माथुर, संकेत और (सुश्री) बबीता संत

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जतिन्द्र कुमार भाटिया, कृष्णम मिश्रा, परम कुमार मिश्रा, राजीव कुमार

दुबे, अश्विन मिश्रा और कमलेन्द्र मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – ये दो अपीलें उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैतीताल द्वारा अपर सेशन न्यायाधीश/त्वरित न्यायालय, हल्द्वानी, नैनीताल (संक्षेप में "विचारण न्यायालय") के तारीख 28 जनवरी, 2004 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई 2004 की दांडिक अपील सं. 54 और 59 को खारिज करते हुए और तद्द्वारा अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और उन्हें दिए गए नीचे वर्णित दंडादेश की अभिपुष्टि करते हुए तारीख 7 अप्रैल, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं : (i) 2002 के सेशन विचारण सं. 93 (राज्य बनाम शब्बीर अहमद और एक अन्य) में भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "भारतीय दंड संहिता") की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास ; (ii) 2002 के सेशन विचारण सं. 104 (राज्य बनाम शब्बीर अहमद) में अपीलार्थी शब्बीर अहमद को आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन 500/- रुपए के जुर्माने सहित एक वर्ष का कठोर कारावास ; और (iii) 2002 से संबद्ध सेशन विचारण मामला सं. 105 (राज्य बनाम रवि मंडल) में अपीलार्थी रवि मंडल को आयुध अधिनियम की धारा 4/25 के अधीन 500/- रुपए के जुर्माने सहित एक वर्ष का कठोर कारावास ।

आरंभिक तथ्य :

2. छोटू **उर्फ** सुरजीत (मृतक) के पिता मान सिंह (अभि. सा. 1) ने तारीख 1 नवंबर, 2001 को राजकीय इंटर महाविद्यालय के 150 मीटर पश्चिम में एक जंगल में अपने पुत्र का शव मिलने पर पुलिस थाना लालकुआं, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में लगभग 7.30 बजे एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसमें यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में मृतक अपने मित्र गोविंद और रवि बंगाली (बाद में जिसकी रवि मंडल के रूप में शनाख्त की गई) के साथ था ; गोविंद, जो एक अपराधी है, उसके पुत्र को गलत

रास्ता चुनने के लिए प्रभावित कर रहा था ; इसलिए उसे संदेह है कि इन व्यक्तियों ने उसके पुत्र की हत्या की और उसके शव को जंगल में छिपा दिया । उसके पश्चात् अभि. सा. 1 ने तारीख 10 नवंबर, 2001 को पुलिस को यह उल्लेख करते हुए एक लिखित इत्तिला दी कि वह गोविंद नहीं अपितु शब्बीर था जो उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को रवि और मज़हर खान के साथ मृतक के साथ था । इस लिखित इत्तिला में यह अभिकथन किया गया कि बबलू (अभि. सा. 7) ने उसे गोविंद का नाम लेने के लिए भ्रमित किया था ।

3. अन्वेषण के दौरान पुलिस ने दो अभियुक्तों अर्थात् इस अपील में अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया और शब्बीर से एक 12 बोर की देसी पिस्तौल सहित एक जिंदा कारतूस और रवि मंडल से एक चाकू की बरामदगी की, जिसके परिणामस्वरूप दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आयुध अधिनियम के अधीन दो अलग-अलग मामले दर्ज किए गए ।

4. अन्वेषण पूर्ण होने पर तीन आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए जिनके परिणामस्वरूप तीन सेशन विचारण उद्भूत हुए, जिन्हें एक-साथ संबद्ध किया गया और एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चित किए गए, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई ।

अभियोजन साक्ष्य

5. इस मामले में दी गई दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए संक्षेप में अभियोजन साक्षियों के परिसाक्ष्य का उल्लेख करना उपयुक्त होगा । अभियोजन पक्ष ने 10 साक्षियों की परीक्षा की थी, उनके परिसाक्ष्य का सार निम्नलिखित है –

(i) **अभि. सा. 1 – मान सिंह – इत्तिलाकर्ता (मृतक का पिता)**

वह हत्या का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । तथापि, उसने तारीख 1 नवंबर, 2001 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने की बात को साबित किया और कथन किया कि– तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को सायंकाल में बबलू (अभि. सा. 7) उसके निवास पर आया, उसे बताया कि मृतक, रवि बंगाली और गोविंद भोजन लाने के लिए कह रहे हैं और उसे उनके लिए

भोजन लाने के लिए भेजा है ; इस अनुरोध पर अभि. सा. 1 की पत्नी (उर्मिला देवी-अभि. सा. 3) ने भोजन बनाया, उसे पैक किया और उसे बबलू को दे दिया, जो भोजन लेकर चला गया ; अगले दिन उसे पता चला कि उसके पुत्र का शव जंगल में पड़ा हुआ है ; इसके पश्चात् वह उस स्थान पर गया, शव को लालकुआं पुलिस थाने लाया और रिपोर्ट दर्ज कराई ; बाद में जब उसे पता चला कि गोविंद उसके पुत्र के साथ नहीं था बल्कि शब्बीर था जो अन्य व्यक्तियों के साथ वहां था, उसने तारीख 10 नवंबर, 2001 को पुलिस को दूसरी रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) दी ।

अभि. सा. 1 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया कि उसके पुत्र (मृतक) के विरुद्ध तीन या चार आपराधिक मामले थे जिनमें वह जमानत पर था ।

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने की तारीख को घटनाओं के क्रम के संबंध में अभि. सा. 1 ने कथन किया कि – एक कांस्टेबल दो व्यक्तियों के साथ सुबह उसे सूचित करने के लिए आया कि उसके पुत्र का शव जंगल में पड़ा हुआ है ; सूचना प्राप्त होने पर वह उस स्थान पर गया और शव को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने लाया, जिसके पश्चात् शव को मुहरबंद किया गया और शव-परीक्षा के लिए हल्द्वानी अस्पताल भेजा गया । उसने यह भी कथन किया कि टिफिन बॉक्स की बरामदगी ; रक्तरंजित मिट्टी एकत्रित करने आदि से संबंधित कागजात पुलिस थाने में तैयार किए गए थे और उसने उन कागजातों पर पुलिस थाने में ही हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 1 ने यह भी स्पष्ट किया कि दूसरी रिपोर्ट (अर्थात् प्रदर्श क-2) पुलिस थाने में उप निरीक्षक द्वारा लिखवाई गई थी और उसने वही लिखा था जो उसे कहा गया था ।

अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के बिल्कुल अंत में यह कथन किया कि उसने उप निरीक्षक को यह भी सूचित किया था कि गोविंद के साथ धन का लेन-देन था और गोविंद द्वारा धन वापस न करने के कारण दुश्मनी पैदा हो गई थी ।

(ii) **अभि. सा. 2-चंदन सिंह**

उसने अभिसाक्ष्य दिया कि – (क) वह शब्बीर अहमद और रवि मंडल को जानता है ; (ख) वे तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग 7.00 बजे अपराह्न में मृतक के साथ उसकी दुकान पर आए थे और वहां से वे सिनेमा हाल की ओर गए थे ; (ग) बाद में तारीख 31 अक्तूबर, 2001/1नवंबर, 2001 की रात्रि में लगभग 12.30 बजे उसने अभियुक्त-अपीलार्थियों को जंगल से निकलते हुए और तेज-तेज चलते हुए देखा ; (घ) उस समय शब्बीर के हाथ रक्त से सने थे और रवि के वस्त्रों पर भी रक्त के धब्बे थे ; (ड.) अभि. सा. 2 को देखकर वे घबरा गए, शब्बीर ने अभि. सा. 2 को धमकी देते हुए यह कहा कि यदि अभि. सा. 2 ने जो कुछ देखा है उसे किसी को बताया तो उसका भी वही अंजाम होगा जो छोटू (मृतक) का हुआ है ; (च) अगले दिन सवेरे अभि. सा. 2 को पता चला कि छोटू का शव उस जंगल में पाया गया है ।

रात्रि के समय वहां अपनी मौजूदगी का कारण दर्शित करने के लिए अभि. सा. 2 ने कथन किया कि– उसके माता-पिता का खट्टा में एक अलग मकान है जहां वह सप्ताह में कम से कम एक बार जाता है ; उस रात, रात्रि का भोजन करने के पश्चात् जब वह 12.30 बजे रात्रि में अपने माता-पिता के मकान से लौट रहा था और स्वयं अपने मकान/दुकान की ओर जा रहा था तब उसने घटना देखी थी ।

अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान कथन किया कि– उसकी दुकान उसके मकान के एक कमरे में चलती है ; यह 5.00 बजे पूर्वाह्न से 11.00 बजे अपराह्न तक खुली रहती है ; उसके मकान में तीन कमरे हैं जहां वह अपनी पत्नी और 5 पुत्रों के साथ रहता है ; उसका रात्रि के भोजन का प्रायिक समय 9.00 बजे है ।

अभि. सा. 2 से यह प्रश्न किया गया था कि रवि (अपीलार्थियों में से एक) की माता अभि. सा. 2 की पड़ोसी है जिसकी भूमि पर अभि. सा. 2 ने अपनी दुकान का निर्माण किया है । अभि. सा. 2 द्वारा इस सुझाव से इनकार किया गया ।

पुलिस को इत्तिला देने में विलंब के संबंध में अभि. सा. 2 ने कथन किया कि वह घटना से स्तब्ध था और जब अभियुक्तों को

गिरफ्तार कर लिया गया, तब वह अपना कथन करने का साहस जुटा सका था ।

अभि. सा. 2 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान स्वीकार किया कि उसे उत्पाद-शुल्क अधिनियम की धारा 60 के अधीन गिरफ्तार किया गया था । उसने इस बात की जानकारी होने से इनकार किया कि उसके जमानत बंधपत्रों की व्यवस्था छोटू के माता-पिता द्वारा की गई थी ।

(iii) **अभि. सा. 3 उर्मिला देवी-मृतक की माता**

उसने साबित किया कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को बबलू (अभि. सा. 7), जो सिनेमा हाल में काम करता था, मृतक के लिए भोजन लेने हेतु उसके मकान पर आया, परिणामस्वरूप भोजन बनाया गया और उसके द्वारा भोजन भेजा गया ।

उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान चंदन (अभि. सा. 2) की जमानत के लिए प्रतिभू होने की बात से इनकार किया । तथापि, उसने स्वीकार किया कि चंदन उसके मकान पर आता रहता था ।

(iv) **अभि. सा. 4-श्रीमती मिथिलेश (गोविंद की पत्नी)**

अभि. सा. 4 ने घटना के बारे में कोई विनिर्दिष्ट अभिसाक्ष्य नहीं दिया सिवाय इसके कि शब्बीर की उसके पति के साथ दुश्मनी थी और छोटू की हत्या से 8 से 10 दिन पूर्व रवि बंगाली और शब्बीर ने उसके पति को बुलाया था, परिणामत: उसका पति गया था किंतु उसके पश्चात् वापस नहीं आया ; बाद में उसे पुलिस से सूचना मिली कि उसके पति को मार दिया गया है और अपराधी पकड़े गए हैं ।

उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान स्वीकार किया कि पुलिस उसके मकान पर छोटू की हत्या के दो-तीन दिन पश्चात् आई थी किंतु उस समय उसने पुलिस को यह सूचित नहीं किया था कि गोविंद और छोटू अभियुक्त व्यक्तियों के साथ गए थे । उसने यह भी स्वीकार किया कि पुलिस ने उससे कोई पूछताछ नहीं की थी और अपने पति की हत्या के संबंध में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई थी ।

(v) **अभि. सा. 5-महेन्द्र खुराना**

उसने कथन किया कि – तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को जब वह सिनेमा हाल में एक रात्रि शो देख रहा था, उसे शौच के लिए बाहर जाना पड़ा, उसने छोटू (मृतक), रवि बंगाली और शब्बीर को जंगल की ओर जाते हुए देखा ; दो-तीन मिनट के बाद उसे गोली चलने की आवाज सुनाई दी और पांच-सात मिनट बाद छोटू को छोड़कर रवि बंगाली और शब्बीर को भागते हुए और आपस में यह बात करते हुए देखा कि उन्होंने छोटू से अपना हिसाब चूकता कर लिया है क्योंकि लगातार धन की मांग करने के कारण वह उनके लिए एक समस्या बना हुआ था । अभि. सा. 5 ने कथन किया कि उसने रात्रि में किसी को भी यह बात नहीं बताई थी किंतु सुबह उसे पता चला कि छोटू की हत्या कर दी गई है ।

उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान स्वीकार किया कि यद्यपि सिनेमा हाल में शौचालय की सुविधा उपलब्ध है किंतु भुगतान करने पर है, इसीलिए वह शौच करने के लिए बाहर गया था । उसने कथन किया कि उसका कथन घटना की रात के अगले दिन सुबह अभिलिखित किया गया था और उस प्रयोजन के लिए उसे कांस्टेबल द्वारा बुलाया गया था । उसका इस पूर्ववर्ती कथन से सामना कराए जाने पर कि उसने गोविंद, छोटू, रवि बंगाली और शब्बीर को जंगल की ओर जाते हुए देखा था, अभि. सा. 5 ने कथन किया कि उसने गोविंद के सिवाय सभी का नाम प्रकट किया था । तथापि, उसने स्वीकार किया कि उसने पुलिस को वह स्थान नहीं बताया था जहां वह उस रात्रि में शौच करने के लिए बैठा था ।

(vi) **अभि. सा. 6-हनुमान प्रसाद**

उसने कथन किया कि – तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग अर्ध-रात्रि में जब वह सिनेमा हाल के सामने डिपो सं. 6 से वापस आ रहा था, उसने तीन व्यक्तियों अर्थात् छोटू, रवि बंगाली और शब्बीर को आपस में बात करते हुए और जंगल की ओर जाते हुए देखा ; अगले दिन सुबह उसे पता चला कि छोटू की हत्या कर दी गई है । उसने शब्बीर को मृतक पर गोली चलाते हुए देखने की बात से इनकार किया । इस प्रक्रम पर, अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही घोषित किया और उसकी

प्रतिपरीक्षा करने की ईप्सा की ।

अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने इस बात से इनकार किया कि उसने पुलिस के समक्ष यह कथन किया था कि शब्बीर अपने साथी पर गोली चला रहा था और रवि ने उसकी टांग पकड़ी हुई थी ।

प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कथन किया कि उसने घटना नहीं देखी थी और उसने पुलिस को भी यह सूचित किया था कि उसने घटना नहीं देखी थी ।

(vii) **अभि. सा. 7-बबलू**

उसने कथन किया कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को वह सिनेमा हाल के दरवाजे पर छोटू से मिला ; छोटू ने उससे उसके निवास से उसके लिए भोजन लाने के लिए कहा ; उस समय छोटू के साथ कोई मौजूद नहीं था । अभि. सा. 7 ने कथन किया कि वह छोटू के निवास पर गया, भोजन लिया और इसे तीन डिब्बों में डाला, किंतु जब वह भोजन लेकर वहां पहुंचा तो उसे कोई दिखाई नहीं दिया । इसलिए उसने वहां भोजन रख दिया । अगले दिन सुबह उसे पता चला कि छोटू की हत्या कर दी गई है । इस प्रक्रम पर, अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही घोषित किया और उसकी प्रतिपरीक्षा करने की अनुज्ञा चाही ।

अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 7 ने कागज सं. 3/15, जो प्रदर्श क-6 के रूप में चिह्नित था, पर अपने हस्ताक्षर होने की बात स्वीकार की । उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने उप निरीक्षक को एक कथन किया था किंतु इस बात से इनकार किया कि उसने छोटू को तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को शब्बीर और रवि बंगाली के साथ देखा था ।

प्रतिरक्षा पक्ष की प्रेरणा पर प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 7 ने कथन किया कि वह सिनेमा हाल में चने बेचता था ; सिनेमा हाल में शौचालय हैं और उन शौचालयों का उपयोग करने के लिए कोई धन नहीं लिया जाता है । उसने यह भी कथन किया कि इस मामले के अन्वेषण

के दौरान पुलिस ने उसकी पिटाई की थी और उसे तीन दिनों तक पुलिस लॉक-अप में निरुद्ध रखा था ।

(viii) **अभि. सा. 8-डा. अनिल चंद्र के. शाह (शव-परीक्षा करने वाला शल्यक्रिया चिकित्सक)**

उसने शव-परीक्षा रिपोर्ट को साबित किया और कहा कि मृतक की मृत्यु बंदूक की गोली से पहुंचीं मृत्यु-पूर्व क्षति के परिणामस्वरूप पहुंचे सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी ।

(ix) **अभि. सा. 9-उप निरीक्षक नन्हे लाल (आयुध अधिनियम के अधीन मामलों का अन्वेषण अधिकारी)**

उसने साबित किया कि मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 7-क) और शवपरीक्षा से संबंधित कागजातों (प्रदर्श क-8 से क-10) को साबित किया । उसने आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराध मामला सं. 756/01, और आयुध अधिनियम की धारा 4/25 के अधीन अपराध मामला सं. 757/01 के अन्वेषण के विभिन्न प्रक्रमों के साथ-साथ आरोप पत्र प्रस्तुत करने और आयुध अधिनियम के उपबंधों के अधीन अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी अभिप्राप्त करने को भी साबित किया ।

अभि. सा. 9 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान कथन किया कि उसने तारीख 6 दिसंबर, 2001 को उस स्थल का स्थल नक्शा तैयार किया था जहां अभियुक्त गिरफ्तार किए गए थे और आयुध बरामद किया गया था । उसने स्थल नक्शा तैयार करने में हुए विलंब को यह कहते हुए स्पष्ट करना चाहा कि वह अन्य मामलों में व्यस्त था ।

(x) **अभि. सा. 10-उप निरीक्षक प्रमोद शाह (हत्या के मामले का अन्वेषण अधिकारी)**

उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण, अभि. सा. 9 के साथ घटनास्थल पर जाने, घटनास्थल का निरीक्षण करने, स्थल नक्शा (प्रदर्श क-15) तैयार करने, अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-4 द्वारा रक्त-रंजित मिट्टी/सादा मिट्टी एकत्रित करने और अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श क-5 द्वारा

घटनास्थल से एक 12 बोर का खाली कारतूस उठाने, जिसके साक्षियों में से अभि. सा. 1 एक साक्षी है ; मृत्युसमीक्षा करने, शिकायतकर्ता मान सिंह (अभि. सा. 1), बबलू (अभि. सा. 7) और महेन्द्र खुराना (अभि. सा. 5) का कथन अभिलिखित करने ; टिफिन को अभिरक्षा में लेने का ज्ञापन तैयार करने ; तारीख 2 नवंबर, 2001 को श्रीमती उर्मिला देवी (अभि. सा. 3), तारीख 3 नवंबर, 2001 को मिथिलेश (अभि. सा. 4), तारीख 7 नवंबर, 2001 को हनुमान (अभि. सा. 6) का कथन अभिलिखित करने ; मान सिंह द्वारा तारीख 10 नवंबर, 2001 को आवेदन प्रस्तुत करने और आरोप पत्र (प्रदर्श क-16) प्रस्तुत करने की बात को साबित किया । उसने तात्विक प्रदर्श आदि भी प्रस्तुत किए । उपरोक्त के अतिरिक्त, उसने कथन किया कि अभियुक्त शब्बीर और रवि मंडल फरार थे, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "दंड प्रक्रिया संहिता") की धारा 82 के अधीन कार्यवाहियां करने के लिए आवेदन दिया गया था । उसके पश्चात्, तारीख 24 नवंबर, 2001 को 3.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त शब्बीर और रवि मंडल को क्रमश: एक 12 बोर की देसी पिस्तौल और चाकू के साथ गिरफ्तार किया था । उसने गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदर्श क-17 को साबित किया ।

अभि. सा. 10 ने कथन किया कि घटनास्थल से तारीख 15 जनवरी, 2002 को बरामद देसी पिस्तौल, खाली कारतूस और गिरफ्तारी के समय अभिगृहीत जिंदा कारतूस को परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला, आगरा भेजा गया था और इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसके अनुसार ईसी-1(शव के निकट पाया गया खाली कारतूस) उस पिस्तौल से दागा गया था जो शब्बीर से बरामद की गई थी ।

अभियुक्त शब्बीर की प्रेरणा पर प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 10 ने कथन किया कि – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में शब्बीर का नाम नहीं था ; अभि. स. 10 लगभग 8.00 बजे घटनास्थल पर पहुंचा ; शव घटनास्थल पर पड़ा हुआ था ; मान सिंह का कथन तारीख 1 नवंबर, 2001 को घटनास्थल पर अभिलिखित किया गया था ; मान सिंह ने उसे सूचित किया था कि छोटू (मृतक) घटना से पूर्व पिछले 10-12 दिन से घर नहीं

आ रहा था, तथापि, छोटू के संबंध में पहले कोई सूचना नहीं दी गई थी ; महेन्द्र खुराना (अभि. सा. 5) ने यह बताया था कि रात्रि में उसने गोविंद को रवि, छोटू और शब्बीर के साथ जंगल की ओर जाते हुए देखा था ; मान सिंह ने तारीख 1 नवंबर, 2001 को यह बताया था कि गोविंद ने छोटू से 16000/- रुपए उधार लिए थे । मान सिंह (अभि. सा. 1) का कथन तीन बार अभिलिखित किया गया था ; चंदन सिंह (अभि. सा. 2) ने तारीख 18 फरवरी, 2002 को एक शपथपत्र दिया था, इससे पूर्व वह नहीं आया था ; उर्मिला देवी, जिसका कथन तारीख 2 नवंबर, 2001 को उसके निवास पर अभिलिखित किया था, ने यह प्रकट नहीं किया था कि अभि. सा. 2 ने अभियुक्त व्यक्तियों को देखा था ; और मिथिलेश (अभि. सा. 4) का कथन दो बार अभिलिखित किया था, एक तारीख 3 नवंबर, 2001 को और दूसरा तारीख 5 दिसंबर, 2001 को । अभि. सा. 10 ने यह भी कथन किया कि शब्बीर और रवि ने उनकी गिरफ्तारी होने पर यह संस्वीकृति की थी कि छोटू की हत्या करने से पूर्व उन्होंने गोविंद की हत्या की थी ।

अभि. सा. 10 ने यह भी कथन किया कि महेन्द्र खुराना (अभि. सा. 5) का कथन तारीख 1 नवंबर, 2001 को उसके निवास पर अभिलिखित किया गया था ; और अभि. सा. 5 ने उस स्थान का खुलासा नहीं किया था जहां वह उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि में शौच करने के लिए बैठा था ।

दोनों अभियुक्तों की गिरफ्तारी के दिन घटनाओं के क्रम के संबंध में अभि. सा. 10 ने कथन किया कि – तारीख 24 नवंबर, 2001 को उसे एक भेदिए से यह जानकारी प्राप्त हुई कि 4.00 बजे अपराह्न में अभियुक्त व्यक्ति उसके मकान पर आएंगे ; उक्त जानकारी लगभग 2.30 बजे अपराह्न में प्राप्त हुई थी ; यह जानकारी प्राप्त होने पर अभि. सा. 10 और उसका दल अपनी जीप में घटनास्थल पर पहुंचा और कुछ दूरी पर जंगल में छिप गए ; 10-15 मिनट पश्चात् अभि. सा. 10 ने अभियुक्त व्यक्तियों को आते हुए देखा और तद्नुसार गिरफ्तार किए गए । अभि. सा. 10 ने यह स्वीकार किया कि उसने किसी लोक साक्षी

को सम्मिलित करने की कोशिश नहीं की थी क्योंकि जिस स्थल से गिरफ्तारी की गई थी वह इलाके से 200 मीटर दूर था । अभि. सा. 10 ने यह भी कथन किया कि गिरफ्तारी और बरामदगी के स्थान का स्थल नक्शा उसकी प्रेरणा पर तारीख 6 दिसंबर, 2001 को तैयार किया गया था । अभि. सा. 10 ने इस सुझाव से इनकार किया कि शव को शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस थाने लाया गया था, दूसरी शिकायत (प्रदर्श क-2) उसके कहने पर लिखी गई थी और पुलिस थाने में बैठकर मिथ्या दस्तावेज तैयार करके अभियुक्तों को मिथ्या रूप से फंसाया गया था ।

अभि. सा. 10 ने यह स्वीकार किया कि– मृतक का आपराधिक इतिवृत्त था और कई बार जेल गया था ; महेन्द्र खुराना (अभि. सा. 5) अपना कथन अभिलिखित कराने के लिए उसके पास नहीं आया था बल्कि अभि. सा. 10 उसका कथन अभिलिखित करने के लिए उसके मकान पर गया था ; महेन्द्र खुराना का कथन मान सिंह (अभि. सा. 1) द्वारा तारीख 1 नवंबर, 2011 को इत्तिला दिए जाने के चार घंटे पश्चात् अभिलिखित किया गया था ।

दंड प्रकिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन कथन

6. रवि मंडल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किए गए अपने कथन में उसे बताई गई अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों से इनकार किया । उसने चाकू की बरामदगी की बात से भी इनकार किया और दावा किया कि उसके कब्जे से कोई भी अपराध में आलिप्त करने वाली वस्तु बरामद नहीं की गई थी । तथापि, उसने प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया ।

7. इसी प्रकार, शब्बीर अहमद ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में उसके विरुद्ध प्रकट अपराध में आलिप्त वाली परिस्थितियों से इनकार किया और कथन किया कि उसके कब्जे से अपराध में आलिप्त करने वाली कोई वस्तु बरामद नहीं की गई थी । तथापि, उल्लेखनीय महत्वपूर्ण बात यह है कि शब्बीर से अभिकथित रूप से बरामद पिस्तौल का प्रयोग करने के संबंध में प्राक्षेपिकी विशेषज्ञ की रिपोर्ट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका कथन

अभिलिखित करते समय उसके समक्ष नहीं रखा गया था ।

विचारण न्यायालय के निष्कर्ष

8. विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 2 (चंदन सिंह) और अभि. सा. 5 (महेन्द्र खुराना) के अभिसाक्ष्यों का यह निष्कर्ष निकालने के लिए अवलंब लिया कि मृतक को अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित उस जंगल/स्थान की ओर जाते हुए देखा गया था जहां से मृतक का शव बरामद हुआ था ; यह कि अभि. सा. 5 ने मृतक और दोनों अभियुक्तों के उस जंगल में प्रविष्ट करने के कुछ पश्चात् जंगल से आ रही गोली चलने की आवाज सुनी थी और उसके कुछ पश्चात् अभियुक्तों को मृतक के बिना उस स्थान से निकलते हुए देखा था । विचारण न्यायालय के अनुसार, यह एक विश्वसनीय परिस्थिति है । विचारण न्यायालय ने दो मुख्य साक्षियों के परिसाक्ष्य की संपुष्टि करने के लिए अभि. सा. 6 सहित अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्य का भी उस क्षेत्र में लगभग अर्ध-रात्रि को दोनों अभियुक्तों के साथ मृतक को अंतिम बार जीवित देखे जाने के संबंध में प्रयोग किया, जहां से अगले दिन सुबह मृतक का शव बरामद किया गया था । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि उस रात्रि को चंद्रमा की रोशनी होने के संबंध में कोई विवाद नहीं है और अभियुक्तों तथा मृतक की शनाख्त करने के लिए साक्षियों के सामर्थ्य को कोई चुनौती नहीं दी गई है । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार घटनास्थल से बरामद खाली कारतूस उसी पिस्तौल से दागा गया था जो शब्बीर के कब्जे से बरामद की गई थी । और चूंकि शव-परीक्षा रिपोर्ट से यह पुष्टि हुई थी कि मृतक की मृत्यु अग्न्यायुध का प्रयोग करके कारित की गई थी, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि युक्तियुक्त संदेह से परे यह साबित किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक की हत्या की थी और साक्ष्य छिपाने के लिए मृतक के शव को जंगल में फेंक दिया था । इस प्रकार, उन्हें तद्नुसार दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया ।

उच्च न्यायालय के निष्कर्ष

9. उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को विश्वसनीय

और परस्पर संपुष्टिकारी पाकर दोषसिद्धि को कायम रखा ।

10. हमने अपीलार्थी रवि मंडल की ओर से सुश्री अंकिता गौतम ; शब्बीर की ओर से विद्वान् न्याय-मित्र श्री गोपाल झा और उत्तराखंड राज्य की ओर से श्री जतिन्द्र कुमार भाटिया को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

अपीलार्थी रवि मंडल की ओर से दलीलें

11. रवि मंडल की ओर से यह दलील दी गई कि जहां तक दोनों अभियुक्तों के साथ मृतक को अंतिम बार देखे जाने के साक्ष्य का संबंध है, न तो अभि. सा. 1 (मृतक के पिता) और न ही अभि. सा. 3 (मृतक की माता) ने तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को मृतक को दोनों अभियुक्तों के साथ देखा था । बबलू (अभि. स. 7) ने यद्यपि यह खुलासा किया था कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को वह छोटू (मृतक) से मिला था किंतु इस साक्षी ने इन दोनों अभियुक्तों में से किसी को उसके साथ होने के बारे में कोई साक्ष्य नहीं दिया था । जहां तक अभि. सा. 2 (चंदन सिंह) के परिसाक्ष्य का संबंध है, उसका कोई अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि वह आरोप पत्र में सूचीबद्ध साक्षी नहीं है और कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसने पहले क्यों कोई प्रकटीकरण नहीं किया था । इसके अतिरिक्त, वह संयोगी साक्षी है जिसकी घटनास्थल पर मौजूदगी के बारे में कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । इसी प्रकार, अभि. सा. 5 भी एक संयोगी साक्षी है और घटनास्थल पर उस विषम समय में उसकी मौजूदगी के लिए स्पष्टीकरण को अभि. सा. 7 और अभि. सा. 10 के कथन के द्वारा मिथ्या ठहराया गया है । और जहां तक अभि. सा. 6 का संबंध है, उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था । इस प्रकार, मृतक को दोनों अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखे जाने का कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है ।

12. उपरोक्त के अतिरिक्त, यह दलील दी गई कि अभियुक्तों से आयुधों की बरामदगी के संबंध में परिसाक्ष्य विश्वासप्रद प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इसके लिए कोई लोक साक्षी नहीं है ; गिरफ्तारी और

बरामदगी के स्थान का स्थल नक्शा अभिकथित बरामदगी के कई दिनों के पश्चात् तैयार किया गया था जिससे यह सुझाव मिलता है कि बरामदगी और गिरफ्तारी का कोई स्थान विद्यमान नहीं था अपितु सोच-विचार करके औपचारिकता पूरी करने के लिए स्थल नक्शा तैयार किया गया था ।

13. यह भी दलील दी गई कि इस बारे में साक्षियों के अभिसाक्ष्य में तात्विक विसंगति है कि क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट शव को पुलिस थाने लाए जाने से पहले दर्ज की गई थी या उसके पश्चात् । अभि. सा. 1 के कथन से यह सुझाव मिलता है कि उसके पुत्र का शव पाए जाने के बारे में उसे पुलिस द्वारा सूचित किया गया था, तदुपरांत वह घटनास्थल पर गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के लिए शव को पुलिस थाने लाया था ; जबकि पुलिस साक्षियों ने यह कहा है कि वे घटनास्थल पर अभि. सा. 1 द्वारा रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के पश्चात् गए थे और घटनास्थल पर उन्होंने मृत्युसमीक्षा कार्यवाही की थी । यह दलील दी गई कि इस विसंगति से इस बारे में संदेह पैदा होता है कि क्या अभियोजन का पक्षकथन पुलिस की प्रेरणा पर अटकलबाजी के आधार पर विकसित किया गया था । यह संदेह दोगुना हो जाता है क्योंकि पहले लिखी गई रिपोर्ट में गोविंद का नाम था और जब यह पाया गया कि गोविंद का पहले ही स्वर्गवास हो चुका है, गोविंद के नाम के स्थान पर शब्बीर का नाम प्रतिस्थापित कर दिया गया था । यह दलील दी गई कि प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतक एक आपराधिक इतिवृत्त का व्यक्ति था और इसलिए उसके कई दुश्मन हो सकते थे । प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेल के अनुसार, इसलिए यह ऐसा मामला है जहां रात्रि में किसी ने अभि. सा. 1 के पुत्र को मार दिया था ; उसके शव का पता चलने के उपरांत अटकलबाजी के आधार पर कहानी गढ़ी गई और इस प्रकार अभियुक्तों को फंसाया गया था । यह दलील दी गई कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का उचित रूप से परीक्षण नहीं किया था और इसलिए दोनों निचले न्यायालयों के निर्णय अपास्त किए जाने योग्य हैं ।

अपीलार्थी शब्बीर की ओर से दलीलें

14. शब्बीर का प्रतिनिधित्व करते हुए विद्वान् न्याय-मित्र ने अपीलार्थी रवि मंडल का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को अपनाया और कहा कि आरंभिक रिपोर्ट में शब्बीर नामित नहीं था । साक्षियों के कथन से यह सुझाव मिलता है कि गोविंद को धन उधार दिया गया था । छोटू (मृतक) गोविंद से अपना धन वापस मांग रहा था और इसलिए गोविंद के पास हेतु था । परिणामत:, संदेह के आधार पर गोविंद के नाम का उल्लेख किया गया था किंतु जब यह पाया गया कि गोविंद का पता नहीं लग रहा है या संभवत: उसकी हत्या कर दी गई है, शब्बीर का नाम गोविंद के स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया था । इन परिस्थितियों में, शब्बीर को आलिप्त करना संदेह से घिरा है और अभियोजन का पक्षकथन, जहां तक यह शब्बीर से संबंधित है, स्वीकार्य नहीं है । विद्वान् न्यायमित्र ने दावा किया कि देसी पिस्तौल की अभिकथित बरामदगी जाली और मिथ्या है जिसका समर्थन करने के लिए कोई लोक साक्षी नहीं है । प्राक्षेपिकी रिपोर्ट को भी इस आधार पर प्रश्नगत किया गया कि इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि देसी पिस्तौल को न्यायालयिक परीक्षण के लिए तारीख 15 जनवरी, 2002 से पहले क्यों नहीं भेजा गया था, जबकि इसे अभिकथित रूप से तारीख 24 नवंबर, 2001 को बरामद किया गया था । यह भी दलील दी गई कि प्राक्षेपिकी रिपोर्ट को अभियुक्त के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका कथन अभिलिखित करते समय नहीं रखा गया था, इसलिए इसे विचारणा से दूर रखा होगा ।

राज्य की ओर से दलीलें

15. इसके विपरीत, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अभि. सा. 7 ने साबित किया है कि मृतक ने सिनेमा हाल में भोजन मंगवाया था ; अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 ने यह कहते हुए अभि. सा. 7 की संपुष्टि की है कि भोजन मृतक सहित तीन व्यक्तियों के लिए भेजा गया था ; और अभि. सा. 2 तथा अभि. सा. 5 ने साबित किया है कि उन्होंने मृतक और दोनों अभियुक्तों को लगभग अर्ध-रात्रि में

उस स्थान के निकट एक-साथ देखा था जहां से अगले दिन सुबह मृतक का शव बरामद किया गया था । इसलिए अभियुक्तों को दोषसिद्ध करने के लिए श्रृंखला पूर्ण है । यह दलील दी गई कि प्रतिरक्षा पक्ष यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि अभि. सा. 5 और अभि. सा. 2 की अभियुक्तों से दुश्मनी थी । इसलिए उनके लिए झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है । इसके अतिरिक्त, प्रतिरक्षा पक्ष ने अभियुक्तों और छोटू की शनाख्त करने के लिए न तो अभि. सा. 2 और न ही अभि. सा. 5 के सामर्थ्य को प्रश्नगत किया है । चंद्रमा की रोशनी होने की बात पर संदेह करने के लिए भी अभि. सा. 5 से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था । सभी साक्षियों ने यह कथन किया है कि चंद्रमा की पूरी रोशनी थी और इस कथन को कोई चुनौती नहीं दी गई है । इन परिस्थितियों में, अभि. सा. 5 का परिसाक्ष्य विश्वसनीय है । परिणामत:, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने उसका अवलंब लेकर न्यायोचित किया था ।

16. अभि. सा. 2 के परिसाक्ष्य के संबंध में राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अभि. सा. 2 पुलिस को प्रकटीकरण करने में तत्पर न रहा हो किंतु उसके परिसाक्ष्य को मात्र इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह ऐसा मामला है जहां अभियुक्त अपराधिक प्रवृत्ति के थे इसलिए साक्षियों के मन में आशंका होने की बात से इनकार नहीं किया जा सकता ।

17. अभि. सा. 6 के परिसाक्ष्य के संबंध में यह दलील दी गई कि उसने भी उस दुर्भाग्यपूर्ण सायंकाल में मृतक को अभियुक्तों के साथ होने के संबंध में अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन किया था इसलिए उसके परिसाक्ष्य का अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्य की संपुष्टि करने के लिए उपयोग किया जा सकता है ।

18. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह कहते हुए अपनी दलीलों का उपसंहार किया कि अंतिम बार देखे जाने की परिस्थिति को पूरी तरह से साबित किया गया है ; देसी पिस्तौल की बरामदगी को भी साबित किया गया है जिसका न्यायालयिक रिपोर्ट के साथ-साथ घटनास्थल पर पाए गए खाली कारतूस से इस बरामद आयुध के साथ

संबंध स्थापित होता है ; शव-परीक्षा रिपोर्ट/चिकित्सीय साक्ष्य से साबित होता है कि मृत्यु बंदूक की गोली लगने के कारण हुई थी और इसमें तारीख 31 अक्तूबर, 2001 की रात्रि में उस समय मृत्यु होने की संभावना को स्वीकार किया गया है जब मृतक को अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखा गया था, इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है और अभियुक्तों की दोषिता के संबंध में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है । अत: विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित की गई दोषसिद्धि में, जिसकी अभिपुष्टि अपील न्यायालय द्वारा की गई है, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

चर्चा और विश्लेषण

19. हमने परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया । इस मामले की विलक्षण विशेषता यह है कि मामले की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जंगल में इत्तिलाकर्ता के पुत्र का शव पाए जाने के पश्चात् तारीख 1 नवंबर, 2001 को 7.30 बजे अपराह्न में दर्ज की गई थी । पुलिस साक्षियों के परिसाक्ष्य के अनुसार, वह इत्तिलाकर्ता ही था जिसने पुलिस को जंगल में उसके पुत्र का शव पाए जाने के बारे में इत्तिला दी थी और उसके पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण आरंभ हुआ था । जबकि अभि. सा. 1 के अनुसार, उसे पुलिस ने सूचित किया था कि उसके पुत्र का शव जंगल में पाया गया है और उसके पश्चात् वह घटनास्थल पर गया, शव को पुलिस थाने लाया और फिर रिपोर्ट दर्ज कराई । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में यह विभेद महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या अभियोजन का पक्षकथन इत्तिलाकर्ता की स्वयं की जानकारी और सूचना पर आधारित है या सुझावों और अटकलबाजी पर, जो पुलिस की प्रेरणा पर हो ।

20. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस बारे में कोई प्रकटीकरण नहीं है कि उस जंगल में शव कैसे पाया गया था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में केवल यह प्रकटीकरण है कि तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में इत्तिलाकर्ता के पुत्र को उसके मित्र गोविंद (जिसे

अभियुक्त नहीं बनाया गया है) और रवि बंगाली के साथ देखा गया था । पूर्वोक्त दो व्यक्तियों के साथ मृतक को किसने देखा था, इस बारे में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई खुलासा नहीं किया गया है । निस्संदेह, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से विश्वशब्दकोश होने की अपेक्षा नहीं की जाती है और उसमें उन सभी साक्षियों के नाम का उल्लेख होना आवश्यक नहीं है जिनसे सूचना प्राप्त होती है किंतु महत्वपूर्ण यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में रवि बंगाली के अतिरिक्त गोविंद नामक व्यक्ति के विरुद्ध संदेह व्यक्त किया गया था, जो कथित रूप से एक आपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है और इत्तिलाकर्ता के पुत्र को गलत रास्ते पर जाने के लिए प्रभावित कर रहा था और शब्बीर अर्थात् अपीलार्थियों में से एक के बारे में कोई प्रकटीकरण नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में आश्चर्यजनक रूप से जिस बात का उल्लेख नहीं है वह यह है कि छोटू (मृतक) और उसके मित्रों को दुर्भाग्यपूर्ण सायंकाल में एक चलचित्र (मुवी) का रात्रि शो देखना था और इसलिए छोटू ने अभि. सा. 7 को अपने माता-पिता (अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3) से भोजन लाने के लिए भेजा था ।

21. अभियोजन की कहानी जो बाद में विकसित की गई, इस आशय की है कि छोटू द्वारा अभि. सा. 7 (बबलू) को अपने लिए और अपने मित्रों के लिए उसके घर से भोजन लाने के लिए भेजा गया था और छोटू की माता (अभि. सा. 3) ने टिफिन के डिब्बों में भोजन भेजा था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहानी का यह भाग पूरी तरह से गायब है, यद्यपि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मृतक के पिता द्वारा दर्ज कराई गई थी जिसे, उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार, इस बारे में जानकारी थी । इन सभी बातों से यह संदेह पैदा होता है कि क्या कहानी में बाद में किए गए सुधार नए जोड़े गए साक्षियों की सहायता से साक्ष्य में कड़ी सृजित करने के लिए थे । यह संदेह अभि. सा. 10 द्वारा दिए गए इस अभिसाक्ष्य से सुदृढ़ होता है कि अन्वेषण के दौरान अभि. सा. 1 ने यह खुलासा किया था कि मृतक घर नहीं आ रहा था और इसलिए यह जांच-पड़ताल करने के लिए कि क्या मृतक के लिए भोजन पैक करने का अभि. सा. 7 का अनुरोध सच्चा था या नहीं, अभि. सा. 1 अभि. सा. 7 के पीछे-पीछे गया था और फिर उसने छोटू, रवि बंगाली को एक-साथ

देखा था और कुछ दूरी पर शब्बीर भी वहां था । महत्वपूर्ण रूप से, अभि. सा. 1 ने न्यायालय में अपने अभिसाक्ष्य के दौरान ऐसा कोई प्रकटीकरण नहीं किया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि साक्षियों की संख्या को बढ़ाने का जानबूझकर प्रयत्न किया गया था । अभियोजन के पक्षकथन में एक अन्य महत्वपूर्ण सुधार इसकी बुनियाद अर्थात् हेतु के विषय में है । आरंभ में, अपराध का हेतु गोविंद के साथ दुश्मनी होना था । किंतु बाद में जब गोविंद को जीवित नहीं पाया गया था, तो उसके स्थान पर शब्बीर को अभियुक्त के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था । इन सभी परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर हमारे मस्तिष्क में इस बारे में संदेह उत्पन्न होता है कि क्या यह गुप्त हत्या का एक सर्वोत्कृष्ट मामला है (अर्थात् जो रात के अंधेरे में एकांत स्थान में घटित हुआ था जहां अपराध को कोई नहीं देख सकता था), इसलिए मामले को सुलझाने के लिए साक्षियों की टोह में अभियोजन की कहानी को या तो समय-समय पर प्राप्त सूचना के आधार पर या गंभीर संदेह या पुलिस के सुझावों से प्रकटित अटकलबाजी के आधार पर विकसित किया गया है । इस पृष्ठभूमि में, हमारे मत में, यह ऐसा मामला है जहां अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की इसके आधार पर दोषसिद्धि करने से पूर्व पूरी सावधानी से, इस बात को विचार में लाए बिना कि अभियुक्तों के विरुद्ध उनकी कोई साबित दुश्मनी नहीं थी, यह अभिनिश्चित करने के लिए कड़ाईपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए थी कि क्या यह साक्ष्य विश्वसनीय, भरोसेमंद/विश्वासप्रद और सत्य है या नहीं ।

22. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जब हम अभियोजन के साक्ष्य की संवीक्षा करते हैं तो हम पाते हैं कि अभियोजन का पक्षकथन प्राथमिक रूप से मृतक को घटनास्थल के निकट दोनों अभियुक्तों के साथ घटना के समय या लगभग अधिसंभाव्य समय पर अर्थात् तारीख 31 अक्तूबर, 2001/1 नवंबर, 2001 की लगभग अर्ध-रात्रि में अंतिम बार एक-साथ जीवित देखे जाने के साक्ष्य पर आधारित है । ऐसा साक्ष्य दो साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 (चंदन सिंह) और अभि. सा. 5 (महेन्द्र खुराना) से आया है । जहां तक अभि. सा. 6 का संबंध है, हम उसे विश्वसनीय नहीं समझते हैं क्योंकि प्रथमत:, उसे शब्बीर द्वारा मृतक

पर बंदूक से गोली चलाने के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में स्थापित किया गया था किंतु उसने बंदूक से ऐसी गोली चलाते हुए देखे जाने की बात से इनकार किया था और द्वितीयत:, प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कथन किया था कि उसने घटना नहीं देखी थी ।

23. जहां तक अभि. सा. 2 का संबंध है, स्वीकृत रूप से उसे पुलिस रिपोर्ट/आरोप पत्र में एक साक्षी के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया है । उसने शपथपत्र पर पुलिस को अपना कथन पहली बार तारीख 18 फरवरी, 2002 को अर्थात् उस तारीख को दिया था जब पुलिस रिपोर्ट तैयार की गई थी । इससे यह विवक्षित है कि वह साढ़े तीन माह तक चुप्पी साधे रहा था । **काली राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उन साक्षियों में से एक साक्षी के परिसाक्ष्य को त्यक्त करते हुए, जिसने अपराध में आलिप्त करने वाली उन परिस्थितियों का विलंब से प्रकटीकरण किया था, जिनकी उसे बहुत पहले जानकारी थी, यह अभिनिर्धारित/मत व्यक्त किया था :–

> "14. .....हमें परमानंद के अभिसाक्ष्य के इस भाग को स्वीकार करने में कठिनाई है । परमानंद ने यह स्वीकार किया था कि उसे ध्यानू और ननती की हत्या के बारे में लगभग चार दिन के पश्चात् केवल उस समय मालूम हुआ था जब उन व्यक्तियों के बारे में यह पाया गया कि उनकी हत्या कर दी गई है । अत: इसका अभिप्राय: यह होगा कि परमानंद को ध्यानू और ननती की हत्या के बारे में 2 अक्तूबर, 1968 को या उसके लगभग ही मालूम हो सका था । यदि अभियुक्त 29 सितंबर की शाम को मृतक ध्यानू के घर की ओर गया होता और परमानंद अभियोजन साक्षी को यह मालूम हो गया होता कि ध्यानू और ननती की उनके घर में हत्या कर दी गई है तो इस तथ्य से अभियुक्त की सह-अपराधिता की बाबत परमानंद को संदेह पैदा हो जाना चाहिए था । तथापि, परमानंद मामले में शांत रहा और इस बाबत कोई बात नहीं की । परमानंद

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1286 = (1973) 2 एस. सी. सी. 808.

का कथन पुलिस द्वारा 11 दिसंबर, 1968 को अभिलिखित किया गया था । यदि कोई साक्षी हत्या के अपराध के लिए दोषी किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली गंभीर परिस्थितियों के बारे में जानने का दावा करता है और साक्षी अभियुक्त के विरुद्ध अभियोग में फंसाने वाली उक्त परिस्थितियों की बाबत दो माह से ऊपर तक चुप्पी साधे रहता है तो अभियोग में फंसाने वाली परिस्थितियों से संबंधित उसके कथन का किसी निश्चायक कारण के अभाव में कम महत्व रह जाता है । हमारे समक्ष इस बात के लिए कोई भी निश्चायक कारण दर्शित नहीं किए गए हैं कि परमानंद ध्यानू और ननती की हत्या के बारे में मालूम होने के पश्चात् भी दो माह से अधिक तक इस तथ्य की बाबत क्यों चुप्पी साधे रहा कि अभियुक्त हत्या के कुछ समय पूर्व मृतक के घर की ओर गया था । अत: हम परमानंद के अभिसाक्ष्य के दूसरे भाग का अवलंब लेने के लिए तैयार नहीं हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

24. ऊपर उद्धृत विधिक सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए हमें यह परीक्षा करनी है कि क्या प्रकटीकरण करने में विलंब के लिए अभि. सा. 2 द्वारा विश्वसनीय स्पष्टीकरण दिया गया था या नहीं । प्रस्तुत मामले में, अभि. सा. 2 द्वारा अपनी साढ़े तीन माह तक की चुप्पी के लिए दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यह है कि वह डरा हुआ था । अभि. सा. 2 ने अपने डर के संबंध में यह कथन किया था कि घटना की रात्रि में जब उसने रवि बंगाली और शब्बीर अहमद को घटना के कुछ पश्चात् जंगल से निकलते हुए देखा था, तब उसने उनके हाथ और वस्त्र रक्त-रंजित देखे थे । अभि. सा. 2 को देखकर उन दोनों अभियुक्तों ने उसे यह कहते हुए धमकी दी थी कि यदि वह (अभि. सा. 2) किसी को जो उसने देखा है उस बारे में बताएगा तो उसका भी वही अंजाम होगा । अभि. सा. 2 ने यह कथन किया था कि दोनों अभियुक्तों के गिरफ्तार होने पर उसका डर दूर हो गया था इसलिए वह अब साक्षी के रूप में उपसंजात हो रहा है । हमारे मत में, यदि पहले प्रकटीकरण न करने के

लिए उसके लिए यह कारण था तो जब एक बार अभियुक्त गिरफ्तार कर लिए गए थे, तो उसके द्वारा तत्परता से प्रकटीकरण किया जाना चाहिए था । महत्वपूर्ण रूप से, दोनों अभियुक्त तारीख 24 नवंबर, 2001 को गिरफ्तार किए गए थे, तो भी तारीख 18 फरवरी, 2002 तक उसके द्वारा कोई प्रकटीकरण नहीं किया गया था । इसलिए हमारे सुविचारित मत में, उसके द्वारा प्रकटीकरण करने में विलंब के लिए दिया गया स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक नहीं है ।

25. मान लिया जाए कि हम प्रकटीकरण करने में विलंब के लिए स्पष्टीकरण को घटना के स्थान और समय पर विचार करते हुए स्वीकार कर भी लें, तो भी अभि. सा. 2 की घटनास्थल पर, विशिष्ट रूप से, उस घनी रात्रि में मौजूदगी स्वाभाविक प्रतीत नहीं होती है । अभि. सा. 2 ने घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी को स्पष्ट करने के लिए यह कथन किया था कि उसके माता-पिता मोहल्ला खट्टा में एक अन्य स्थान पर रहते हैं और इसलिए उनसे मिलने के लिए वह उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को उनके पास गया था और वापस आते हुए रास्ते में उसने घटना देखी थी । अभि. सा. 2 ने प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कहा कि वह रात्रि का भोजन आम तौर पर 9.00 बजे रात्रि में अपने परिवार के साथ करता है और वह सप्ताह में एक बार अपने माता-पिता के पास जाता रहता है । अभि. सा. 2 के अनुसार, उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को वह स्वयं अपने मकान में रात्रि का भोजन लेने के पश्चात् अपने माता-पिता के पास जाने के लिए अपने मकान से गया था और वापस आते हुए रास्ते में 12.30 बजे रात्रि में उसने घटना देखी थी । यह स्पष्टीकरण विश्वासोत्पादक नहीं है, विशिष्ट रूप से क्योंकि उसके माता-पिता से रात्रि के उस विषम समय में उनके मकान पर अभि. सा. 2 के जाने की बात की संपुष्टि करने के लिए परिप्रश्न नहीं किए गए थे या परीक्षा नहीं की गई थी । हमारे मत में, अभि. सा. 2 मात्र एक संयोगी साक्षी है जिसकी उस समय पर घटनास्थल पर मौजूदगी के लिए समाधानप्रद रूप से स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है इसलिए इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वह अप्रायिक रूप से लंबे समय अर्थात् साढ़े तीन माह से अधिक समय तक चुप्पी साधे रहा था इसलिए उसका परिसाक्ष्य किसी विश्वास के योग्य नहीं है ।

हमारे मत में, निचले न्यायालयों ने उसके परिसाक्ष्य का अवलंब लेकर गलती की है ।

26. जहां तक अभि. सा. 5 (महेन्द्र खुराना) के परिसाक्ष्य का संबंध है, वह भी एक संयोगी साक्षी है । किसी संयोगी साक्षी के परिसाक्ष्य का कब अवलंब लिया जा सकता है, इस बारे में विधि स्थिर है जो यह है कि किसी संयोगी साक्षी के साक्ष्य की संवीक्षा अति सावधानीपूर्वक और सूक्ष्मता से की जानी चाहिए और संयोगी साक्षी को अवश्य घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करना चाहिए । ऐसे संयोगी साक्षी के अभिसाक्ष्य को त्यक्त कर दिया जाना चाहिए जिसकी घटनास्थल पर मौजूदगी संदेहपूर्ण हो । (**राजेश यादव और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] और **जरनैल सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले देखें) ।

27. अभि. सा. 5 द्वारा उस विषम समय पर घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी के लिए दिया गया स्पष्टीकरण मिथ्या प्रतीत होता है । अभि. सा. 5 के अनुसार, उसका पेट खराब था इसलिए एक चलचित्र (मुवी) का रात्रि शो देखते समय शौच करने जाने के लिए वह सिनेमा हाल से बाहर आया था और जब वह शौच कर रहा था तब उसने घटना देखी थी । यह उल्लेखनीय है कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 10) और अभि. सा. 7, उस सिनेमा हाल में एक चने बेचने वाले ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि सिनेमा हाल में शौचालय हैं जहां उनका उपयोग करने के लिए कोई धन नहीं लिया जाता है । इससे अभि. सा. 5 का यह स्पष्टीकरण मिथ्या हो जाता है कि वह शौच करने के लिए सिनेमा हाल से इसलिए बाहर गया था क्योंकि सिनेमा हाल शौचालय के उपयोग के लिए धन लेता था । अन्यथा भी, अभि. सा. 10 (अन्वेषण अधिकारी) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कहा था कि उसे वह स्थान नहीं दिखाया गया था, जहां अभि. सा. 5 शौच करने के लिए बैठा था ।

28. इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 5 एकमत नहीं रहा है क्योंकि दंड

---

[1] (2022) 12 एस. सी. सी. 200.

[2] (2009) 9 एस. सी. सी. 719.

प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अपने कथन में, जिससे उसके अभिसाक्ष्य के दौरान उसका सामना कराया गया था, उसने गोविंद, रवि बंगाली और शब्बीर को यह कहते हुए अभ्यारोपित किया था कि सभी तीनों मृतक के साथ मौजूद थे किंतु न्यायालय में अपना अभिसाक्ष्य देने के दौरान उसने यह कथन किया कि गोविंद मौजूद नहीं था । वह उस स्थान के संबंध में भी एकमत नहीं है जहां उसका कथन अभिलिखित किया गया था । एक स्थान पर उसने यह कहा है कि कथन पुलिस थाने में अभिलिखित किया गया था और दूसरे स्थान पर उसने कहा है कि यह उसकी दुकान पर अभिलिखित किया गया था ।

29. इसके अतिरिक्त, इस मामले की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अभि. सा. 10 (अन्वेषण अधिकारी) के अनुसार अभि. सा. 5 का कथन उसके द्वारा तारीख 1 नवंबर, 2001 को अभि. सा. 5 के मकान पर अभिलिखित किया गया था । अभि. सा. 5 का कथन अभिलिखित करने के लिए उसके निवास पर जाने के लिए पुलिस के लिए क्या कारण था, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रकट नहीं किया गया है । हम इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं पाते हैं कि पुलिस क्यों अभि. सा. 5 के निवास पर उसका कथन अभिलिखित करने के लिए जाएगी जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में घटनास्थल पर अभि. सा. 5 की मौजूदगी के बारे में या घटना के बारे में उसे जानकारी होने के संबंध में कोई प्रकटीकरण नहीं किया गया है । इन सभी परिस्थितियों से हमारे मस्तिष्क में यह संदेह पैदा होता है कि क्या जंगल में शव का पता चलने पर अभियुक्तों को तथ्यों से परिचित व्यक्तियों से प्राप्त सूचना की बजाय पुलिस की प्रेरणा पर संदेह के आधार पर फंसाया गया था ।

30. उपरोक्त सभी कारणों से, जब हम अभि. सा. 2 और अभि. सा. 5 के परिसाक्ष्य का सावधानीपूर्वक और सम्यक् सतर्कता से मूल्यांकन करें, जैसा कि मामले के तथ्यों में अपेक्षित है, हम पाते हैं कि उनके परिसाक्ष्य से दोषसिद्धि संधार्य करने के बारे में हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है । दुर्भाग्यपूर्ण रूप से, निचले न्यायालयों ने इसे स्थिर विधिक सिद्धांतों की कसौटी पर परखे बिना वेदवाक्य के रूप में स्वीकार

किया जिसके परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हानि हुई है । अत: हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित करने में असफल रहा है कि मृतक को सुसंगत समय पर घटनास्थल के निकट अभियुक्तों के साथ अंतिम बार जीवित देखा गया था ।

31. जहां तक अभियुक्तों की गिरफ्तारी के समय पर उनसे देसी पिस्तौल और चाकू की बरामदगी होने का संबंध है, इससे निम्नलिखित कारणों से हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है – अभि. सा. 10, अन्वेषण अधिकारी के अनुसार जब वह संदिग्धों/अभियुक्तों की तलाश कर रहा था तब एक भेदिए से यह जानकारी मिली कि अभियुक्त 4.00 बजे अपराह्न में एक विनिर्दिष्ट स्थान पर आने वाले हैं । किंतु उक्त जानकारी प्राप्त होने का कोई उल्लेख नहीं है । यद्यपि यह कहा गया है कि यह जानकारी कार्रवाई से कुछ घंटे पहले प्राप्त हुई थी । यह मान लिया जाए कि ऐसी जानकारी प्राप्त हुई थी, तो भी किसी लोक साक्षी को संबद्ध करने का कोई प्रयास किया गया प्रतीत नहीं होता है हालांकि अभि. सा. 10 के अनुसार घटनास्थल से एक बस्ती लगभग 200 मीटर दूर थी । अंत में, सबसे रोचक बात यह है कि अन्वेषण अधिकारी, जिसने आयुध अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में मामले का अन्वेषण किया था, ने गिरफ्तारी/बरामदगी के स्थान का स्थल नक्शा तारीख 6 दिसंबर, 2001 को तैयार किया था यद्यपि गिरफ्तारी अभिकथित रूप से 24 नवंबर, 2001 को की गई थी, जिससे मामले के तथ्यों में यह सुझाव मिलता है कि यह औपचारिकता पूरी करने के लिए एक कवायद थी । इसके अतिरिक्त, स्थल नक्शा से वह स्थान प्रकट नहीं होता है जहां अभियुक्तों को घात लगाकर पकड़ने के लिए जीप को जंगल में छिपाया गया था । ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों को इस तथ्य सहित ध्यान में रखते हुए कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में शब्बीर को एक संदिग्ध के रूप में नामित नहीं किया गया था और उसका नाम बाद में अभि. सा. 5 के कथन में निकलकर आया था जिसका कथन उसी दिन उसके निवास पर अभिलिखित किया गया था, यद्यपि उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में एक साक्षी के रूप में उद्धृत नहीं किया गया था, अभि. सा. 1 के इस कथन को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस ने शब्बीर को

अभ्यारोपित करते हुए दूसरी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, हमारा यह मत है कि पुलिस ने शब्बीर को फंसाने में असाधारण रुचि दिखाई थी और इसलिए उपरोक्त सभी कारणों से अपीलार्थियों से बंदूक और चाकू की दिखाई गई अभिकथित बरामदगी से हमारा विश्वास प्रेरित नहीं होता है । हमारे सुविचारित मत में, दोषसिद्ध संधार्य करने के लिए ऐसी बरामदगी का अवलंब लेना असुरक्षित होगा ।

32. जहां तक न्यायालयिक रिपोर्ट/प्राक्षेपिकी रिपोर्ट का संबंध है, इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन शब्बीर, जिससे देसी पिस्तौल अभिगृहीत की गई थी, का कथन अभिलिखित करते हुए उसके समक्ष नहीं रखा गया था, इसलिए किसी भी स्थिति में इसे विचारणा से दूर रखा जाना होगा ।

निष्कर्ष

33. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह सुविचारित मत है कि प्रस्तुत मामला एक ऐसा सर्वोत्कृष्ट मामला है जहां अज्ञात हत्या, जो रात के अंधेरे में एक जंगल में घटी थी, को सुलझाने के लिए साक्ष्य के टुकड़े-टुकड़े एकत्रित किए गए थे जिनके आधार पर दोषसिद्धि करने से पूर्व गहराई से संवीक्षा करने की आवश्यकता थी । अभियोजन के साक्ष्य की गहराई से संवीक्षा करने और ऊपर चर्चा किए गए स्थिर विधिक सिद्धांतों की कसौटी पर इसे परखने के पश्चात्, हम इस साक्ष्य को अभियुक्त अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए विश्वासोत्पादक नहीं पाते हैं । हमारे मत में, निचले न्यायालय सही विधिक सिद्धांतों को लागू करके साक्ष्य का उचित रूप से मूल्यांकन और परीक्षण करने में असफल रहे हैं । इन परिस्थितियों में, निचले न्यायालयों के निर्णय अपास्त किए जाने योग्य हैं । परिणामतः, ये अपीलें मंजूर की जाती हैं । उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थियों को उन सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है जिनके लिए उनका विचारण किया गया था और दोषसिद्ध किया गया था ।

34. यह बताया गया है कि अपीलार्थी जमानत पर हैं, उन्हें अभ्यर्पण करने की आवश्यकता नहीं है । उनके जमानत बंधपत्र, यदि कोई हैं, उन्मोचित किए जाते हैं । यदि वे जमानत पर नहीं हैं, तो उन्हें, जब तक कि किसी अन्य मामले में आवश्यकता न हो, तुरंत छोड़ दिया जाएगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

(1955 का अधिनियम संख्यांक 25)[1]

[18 मई, 1955]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. **अधिनियम का लागू होना** – (1) यह अधिनियम लागू है –

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्राह्मो समाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मतः हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मतः जैन, बौद्ध या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मतः

---

[1] इस अधिनियम का, 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1.7.1965 से) दादरा और नागर हवेली पर, और 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1.10.1963 से) उपांतरों सहित पांडिचेरी पर विस्तार किया गया ।

मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मतः यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है :–

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों,

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था, तथा

(ग) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो, यद्यपि धर्मतः हिन्दू नहीं है तथापि ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा के अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरंतर और एकरूपता से अनुपालित

किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परंतु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो, और अयुक्तियुक्त या लोकनीति के विरुद्ध न हो : तथा

परंतु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुंब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुंब द्वारा बंद न कर दी गई हो ;

(ख) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त विनिर्दिष्ट कर दे ;

(ग) "पूर्ण रक्त" और "अर्ध रक्त" – कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्ध रक्त से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों ;

(घ) "एकोदर रक्त" – दो व्यक्ति एक से एकोदर रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जबकि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ।

स्पष्टीकरण – खंड (ग) और (घ) में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है ;

(ङ) "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित ;

(च) (i) "सपिंड नातेदारी" जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में तीसरी

पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है) और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में पांचवीं पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत पांचवीं पीढ़ी भी आती है), जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी ;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उनमें से दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरुष हो या जब कि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरुष, जो, निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो ;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियां" – दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं –

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपरिक पूर्वपुरुष हो ; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरुष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो ; या

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो ; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों ।

स्पष्टीकरण – खंड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिए "नातेदारी" के अंतर्गत आती है –

(i) पूर्ण रक्त की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी ;

(ii) धर्मज रक्त की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त की नातेदारी ;

(iii) रक्तजन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी ;

और उन खंडों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा ।

4. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव** – इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय –

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्रवाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी ;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

हिन्दू विवाह

5. **हिन्दू विवाह के लिए शर्तें** – दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :–

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो ;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार –

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो ; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए, अयोग्य हो ; या

(ग) उसे उन्मत्तता [2]*** का बार-बार दौरा न पड़ता हो ;]

(iii) विवाह के समय वर ने [3][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 39 की धारा 2 द्वारा "या मिरगी" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "अठारह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो ;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी डिग्रियों के भीतर न हों ;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ियां प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों ;

[2] * * * *

6. [**विवाह में अभिभावकता** ।] – बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) निरसित ।

7. **हिन्दू विवाह के लिए कर्मकांड** – (1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकांड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्ततः सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है ।

8. **हिन्दू विवाहों का रजिस्ट्रीकरण** – (1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेगी जो यह उपबन्धित करें कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से सम्बद्ध विशिष्टियों को इस प्रयोजन के लिए रखे गए हिन्दू विवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसी कि विहित की जाएं, प्रविष्टि करा सकेंगे ।

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "पन्द्रह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (vi) का लोप किया गया ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में, जो विनिर्दिष्ट की जाएं, वैवश्यक होगा और जहां कि कोई ऐसा निदेश निकाला गया हो, वहां इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जोकि पच्चीस रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिए जाएंगे ।

(5) इस धारा में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधिमान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

9. **दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन** – [1]*** जब कि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[2][**स्पष्टीकरण** – जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य के

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा कोष्ठक और अंक "(1)" का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।]

[1]* * * * *

10. **न्यायिक पृथक्करण** – [2][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।]

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखण्डित कर सकेगा ।

विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

11. **शून्य विवाह** – इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [3][दूसरे पक्षकार के विरुद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।

12. **शून्यकरणीय विवाह** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा :–

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 4 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 5 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[1][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है ; या]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन करता है ; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मति या, जहां कि [2][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उस रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की संपत्ति, बल प्रयोग द्वारा [3][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी ; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी –

(क) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि –

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने या कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए ; या

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है ;

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा खण्ड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनूसूची द्वारा (1.10.1978 से) "धारा 5 के अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "या कपट द्वारा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए, कि –

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनभिज्ञ था ;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है ; और

(iii) [1][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

13. **विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

[2][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; या

(ia) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

(ib) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है ; या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "डिक्री के आधारों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड में, –

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या नि:शक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घस्थायी विकार या नि:शक्तता (चाहे इसमें वृद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; या]

(iv) [2][दूसरा पक्षकार] उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है ; या

(v) [2][दूसरा पक्षकार] संचारी रूप से रतिज रोग से पीड़ित रहा है ; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है ; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः सुना होता । [3]***

[3]* * * * *

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा खंड (viii) और खंड (ix) का लोप किया गया ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।]

[2][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के पश्चात् [3][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारंभ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [3][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठान के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो ; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का [1][दोषी रहा है ; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश के पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है ;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण – यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][13क. **विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दोषी रहा है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 8 द्वारा अंतःस्थापित ।

को ध्यान में रखते हुए यह न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।

13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही है, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।]

14. **विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [1][जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो :]

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

की तारीख से [1][एक वर्ष बीतने के पूर्व] भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि डिक्री तब तक सप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारतः उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष के अवसान] से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] से पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

15. **कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुनः विवाह कर सकेंगे** – जब कि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की तो गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुनः विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।

[2]* * * * *

[3][16. **शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता** –

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 10 द्वारा परन्तुक का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 11 द्वारा धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के, अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहां धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने से पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत किए जाने की बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका धर्मज अपत्य समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता ।]

17. **द्विविवाह के लिए दंड** – यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तद्नुसार लागू होंगे ।

18. **हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तों के उल्लंघन के लिए दंड** – हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड

(iii), (iv) [1][और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन में इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह –

[2][(क) धारा 5 के खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा अथवा दोनों से;]

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, [3]***

दंडनीय होगा ।

अधिकारिता और प्रक्रिया

[4][19. **वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी** – इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर –

(i) विवाह का अनुष्ठान हुआ था; या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था; या

[5][(iiik) यदि पत्नी अर्जीदार है तो जहां वह अर्जी पेश किए

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2007 के अधिनियम सं. 6 की धारा 20 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "और" शब्द का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 12 द्वारा धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 4 द्वारा अंतःस्थापित ।

जाने के समय निवास कर रही है, या]

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे, में, यदि वह जीवित होता तो, स्वाभाविकतया सुना होता ।]

20. **अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन** – (1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रकृति अनुज्ञात करे [1][और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर] ऐसी हर अर्जी [1][यह भी कथित करेगी] कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्ष के बीच कोई सन्धि नहीं है ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित किए जाएंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होंगे ।

21. **1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां जहां तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होंगी ।

[2][21क. **कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति** – (1) जहां –

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 13 द्वारा "और वह यह और भी कथित करेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 14 द्वारा अन्तःस्थापित ।

अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, –

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचार और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी ;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उच्च न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।

21ख. **इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबन्ध** – (1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे में साध्य हो, दिन प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किए जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

21ग. **दस्तावेजी साक्ष्य** – किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है ।]

[1][22. **कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 15 द्वारा धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

23. **कार्यवाहियों में डिक्री** – (1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में, चाहे उसमें प्रतिरक्षा में की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि –

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खण्ड (ii) के उपखण्ड (क), उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहां कि अर्जी का आधार [2]*** धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) में विनिर्दिष्ट आधार हो वहां न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यों का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहां कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहां अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[1][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसी सम्मति बल, कपट या असम्यक् अभियोजित नहीं की जाती है, और]

(ग) [3][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुस्सन्धि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तद्नुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व, यह न्यायालय का प्रथमतः कर्तव्य होगा कि वह ऐसी हर दशा में, जहां कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो पक्षकारों के बीच मेल-मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), खण्ड (iii), खण्ड (iv), खण्ड (v), खण्ड (vi) या खण्ड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[1][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को पंद्रह दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[2][23क. **विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को**

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 17 द्वारा अंतःस्थापित ।

अनुतोष – विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. **वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय** – जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो :

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, यथास्थिति, पत्नी या पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

25. **स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण** – (1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी [2]*** उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 8 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा "जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक" शब्दों का लोप किया गया ।

अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को [1][तथा पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए] न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से, जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह पतिव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है, [2][तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश को ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखंडित कर सकेगा ।]

26. **अपत्यों की अभिरक्षा** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा "जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक" शब्दों का लोप किया गया ।

और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा :

[1][परंतु ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लंबित रहने तक अप्राप्तवय अपत्यों के भरण-पोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

27. **सम्पत्ति का व्ययन** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उसके आस-पास उपहार में दी गई हो और संयुक्ततः पति और पत्नी दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्धित कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

[2][28. **डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 9 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [1][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28क. **डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

व्यावृत्तियां और निरसन

29. **व्यावृत्तियां** – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच, अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मों, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यताप्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबन्ध पर

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के संबंध में हो ।

30. **[निरसन ।]** – रिपीलिंग एण्ड अमेंडिंग ऐक्ट, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसित ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संविधान संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in